मेघदूतम्

पूज्यपिता

पं० यज्ञनारायण मिश्र

को

सादर समर्पित

प्रस्तावना

साहित्य मानव की अनुभूत एवं काल्पनिक भावनाओं की सरस अभिव्यक्ति है। वह जब अपने चारों ओर हो रही घटनाओं, प्राकृतिक सुषमाओं को देखता है, तो उसके मन में उनके प्रति एक प्रकार की एकरसता उत्पन्न होती है एवं उसी एकरसता की अभिव्यक्ति जब वह भाषा के माध्यम से कर देता है तो साहित्य का जन्म होता है। साहित्य की सर्जना में इस एकरसता का बहुत महत्व है। साहित्यकार उससे जहां तनिक भी दूर हुआ, उसकी रचना अवास्तविकता एवं नीरसता से आच्छादित हो उठती है। इस एकरसता के लिए सच्ची साधना की आवश्यकता होती है और वह साधना मनुष्य की दैवी शक्ति, अभ्यास, अनुभव एवं अध्ययन से सम्बन्धित होती है। सच्चा साहित्यकार एक योगी है। योगी की तरह ही वह अपने—भाव-ब्रह्म का साक्षात्कार करता है जिनमें इस साक्षात्कार की शक्ति नहीं है वे कवि या कलाकार बनने के अधिकारी नहीं हैं। कालिदास इन सभी गुणों से सम्पन्न थे। यही कारण है कि युग एवं परिस्थितियों के पट-परिवर्तन के बावजूद भी उनकी रचनाएँ करोड़ों जन-मानसों को उसी तरह आनन्दित कर रही हैं, जैसे अपने निर्माण-काल में करती थीं।

मेघदूत कालिदास का खण्ड-काव्य है। अपनी सरसता एवं काव्य-कला-परिपूर्णता के कारण यह आज भी विश्वहृदय का कण्ठहार बना हुआ है। इसकी विशेषताओं के कारण ही स्थिरदेव ने इसे साहसपूर्वक महाकाव्य कहा था। यदि कालिदास ने अपने अन्य ग्रन्थों की रचना न की होती, तो भी मुझे विश्वास है कि मेघदूत के कारण ही लोग उन्हें कविकुलगुरु की उपाधि से विभूषित करने में संकोच न करते। शायद ही कोई ऐसी सभ्य भाषा हो, जिसमें इस अन्यतम काव्य का भाषान्तर न किया गया हो। कवि ने जिस वस्तु को अपने काव्य का विषय बनाया है, वह सचमुच ही प्रशंसनीय है। नायक यक्ष एवं नायिका यक्षिणी की प्रेम-भावना बहुत ही उदात्त कोटि की है। विप्रलम्भ शृङ्गार में भी प्रवास विप्रलम्भ को अपना कर कालिदास ने अपने काव्य को अश्लीलता

से बचा लिया है। विवाह काल से लेकर यक्ष-दम्पत्ति में मन-वचन और शरीर से एक-दूसरे के प्रति प्रेम रहता है। इस पवित्र प्रेम में कहीं भी किसी प्रकार का दोष नहीं आने पाया है। यक्ष सम्पूर्ण संसार को यक्षिणीमय देखता है और यक्षिणी सम्पूर्ण विश्व को यक्षमय देखती है। गृहस्थ-जीवन की सफलता की यही तो कुञ्जी है और यही तो वह बीज है, जो धीरे-धीरे अपनी छाया में ब्रह्म को आत्मसात करके रहस्यवाद की संज्ञा धारण करता है।

महाकवि कालिदास ने अपने इस दूत-काव्य की प्रेरणा आदि कवि की 'रामायण' से ली थी, यह बात विचारोपरान्त सत्य प्रमाणित होती है। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में इस बात को अंकित किया है :—

"सीतां प्रति रामस्य हनुमत्संदेशं मनसि निधाय मेघसन्देशं कविः कृतवानित्याहुः"।

यदि कालिदास के मन में मेघदूत की रचना करते समय वाल्मीकीय रामायण का वह प्रसंग जिसमें हनुमान दूत बनकर जाते हैं, न होता, तो इन दोनों ग्रन्थों में वह समानता जो आज प्राप्त होती है, न होती। यथा—भगवान राम के संदेश का प्रारम्भ ऋष्यमूक पर्वत से होता है, तो यक्ष के सन्देश का आरम्भ रामगिरि से। दोनों नायक भी एक पत्नी व्रती और एक सरीखे कोमल एवं प्रेमालु हैं। राम यदि रावण के कारण अपनी प्रिया से अलग होते हैं, तो यक्ष रावण के भाई कुबेर के कारण। राम की तरह यक्ष भी अपनी प्रियतमा के लिए अभिज्ञान देता है। राम का दूत उत्तर से दक्षिण की ओर जाता है तो यक्ष का दूत दक्षिण से उत्तर की ओर। दोनों के दूतों में भी पर्याप्त समानताएँ हैं। नारी के पास भेजे जाने वाले दूत में जो गुण चाहिए, वे दोनों में हैं। दोनों उच्च-कुलोत्पन्न हैं। दोनों अपने-अपने कार्य के अनुरूप शक्तिशाली हैं। दोनों सर्वेन्द्रिय सम्पन्न होते हुए भी इन्द्रियजयी हैं। जिस प्रकार पवनपुत्र इच्छानुरूप रूपधारी हैं, उसी प्रकार पुष्करा पर्वतक मेघ भी है—

पुष्करा नाम ते मेघा बृहतस्तोयमस्सरा।
पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह विश्रुताः॥
नानारूपधरास्ते तु महाघोरस्वनास्तथा।
कल्पान्ते वृष्टिकर्तारः संवर्ताग्नेर्नियामकाः॥

(ब्रह्माण्ड पुराण तथा पुराण सर्वस्व)

स्वयं कालिदास ने भी इस बात की ओर संकेत किया है :

"जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।"

दोनों परार्थार्पित हैं। हनूमान वायु के पुत्र हैं तो मेघ वायु का मित्र। स्वयं वाल्मीकि ने सुन्दर काण्ड मे भी हनूमान की तुलना मेघ से कई बार की है—

"पुष्पौघेण सुगन्धेन नानावर्णेन वानरः ।
बभौ मेघ इवोद्यन्वै विद्युद्गणविभूषितः ॥"

+ + +

"कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ।"

+ + +

"व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः ।"

+ + +

"तमभ्रघनसंकाशमापतन्तं महाकपिम् ।
दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे········॥"

वाल्मीकि ने मेघ और विद्युत् को पति-पत्नी के रूप में अंकित किया है :—

"अनुजग्मुः पतिं वीरं घन-विद्युल्लता इव ।"

कालिदास ने भी उन्हें हमारे सामने दम्पति रूप में रखा है :—

"इष्टान् देशान् विचर जलद ! प्रावृषा सम्भृतश्री-
र्माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगाः ।"

दोनों की नायिकाओं के निवास पर्वतों पर ही हैं। लंका सुबेल (त्रिकूट) पर्वत पर है, तो अलका कैलास पर। दोनों नगरियोंपर शंकर की असीम कृपा है। दोनों नायिकाएँ यौवनावस्था में वियोग प्राप्ता हैं। दोनों के चरित्र पातिव्रतोव्रत हैं। दोनों अति सुन्दरी और पति-प्राण-प्यारी हैं। दोनों अप्रसूता हैं। दोनों के रूप वर्णन में भी पर्याप्त समानताएँ हैं। वाल्मीकि ने सीता के रूप-चित्रण में निम्नलिखित विशेषताओं की ओर दृष्टिपात किया है :—

"ददर्श तन्वीं मनसाभिजाताम् ।"

\+ + +

"उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥"

\+ + +

"तां विलोक्या विशालाक्षीमधिकं मलिनं कृशाम् ।"

\+ + +

सीतामसितलोचनाम् ।

\+ + +

मदिरेक्षणाम् ।

\+ + +

स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहृतस्तनीम् ।
दिदृक्षुरसितापांगीमुपावर्तत रावणः ॥

\+ + +

एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः ।

\+ + +

तस्याः पुनर्बिम्बफलोपमोष्ठं······।

\+ + +

सितशुक्लदंष्ट्रं·········।

\+ + +

एकवेणीधरा बाला रामदर्शनलालसा ।
उपवास परिश्रान्ता मलिना जटिला कृशा ॥

\+ + +

श्यामां कमलपत्राक्षीमुपवासकृशाननाम् ।

\+ + +

भूमिशय्या विवर्णांगी पद्मिनीव हिमागमे।

+ + +

मेघरेखापरिवृता चन्द्ररेखेव निष्प्रभा।

+ + +

सीता के रूपवर्णन की ये सभी विशिष्टताएँ यक्षिणी के रूपवर्णन में भी पायी जाती हैं :—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवति विषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

+ + +

जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्।

+ + +

हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्तिलम्बालकत्वा-
न्निद्यदोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति॥
उत्संगे वा मलिन वसने······आदि आदि।

+ + +

रामायण में सीता जी राम के लिए दो प्रकार के अभिज्ञान देती हैं। एक दृश्य और दूसरा रहस्याख्यायी :—

अभिज्ञानं च रामस्य दद्या हरिगणोत्तम।
क्षिप्तामिषीकां काकस्य कोपादेकाक्षिशातनीम्॥
मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः।

+ + +

नखाग्रे केन ते भीरु रादितं वै स्तनान्तरम्।
कः क्रीडति सरोषेण पंचवक्त्रेण भोगिना॥

कालिदास के यक्ष का सन्देश भी उसी तरह का रहस्याख्यायी है :—

भूयश्चावाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा ।
सान्तर्हासं कथितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव ! रमयन्कामपि त्वं मयेति ॥

हनूमान सीता का दर्शन उस समय करते हैं, जब वे अकेली रहती हैं :—

एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ।

दर्शन का समय रात्रि है और दर्शन करते समय वे लघुरूप धारण करते हैं :—

तदेहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः ।

मेघ भी यक्षिणी का दर्शन इसी रूप में करने की शिक्षा यक्ष द्वारा प्राप्त करता है :—

मत्संदेशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे ।
तामुन्निद्रामवनि शयनां सौधवातायनस्थः ॥

जिस प्रकार पवन पुत्र अपना परिचय सीता को देते हैं, उसी तरह मेघ भी :—

अहं रामस्य संदेशाद्देवि दूतस्तवागतः ।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥

\+ + +

हनुमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमुपागतम् । (रामायण)

\+ + +

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे ! विद्धि मामंबुवाहं
तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ।

\+ + +

ब्रूया एवं "तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले ! पृच्छति त्वां वियुक्तः ॥ *(मेघदूत)*

जिस प्रकार सीता जी हनूमान को स्व-दुःख-निवारण-हेतु सक्षम मानती हैं, उसी तरह यक्ष भी मेघ को मानता है :—

त्वमस्मिन् कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम।
तस्य चिन्तय यो यत्नो दुःखक्षयकरी भवेत्॥ (रामायण)

\+ \+ \+

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां······
यच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा॥
सन्तप्तानां त्वमसि शरणं·········। (मेघदूत)

इतना ही नहीं, आवश्यकता न होने पर भी राम की कथा का कविद्वारा बार-बार स्मरण, इस तर्क की और भी अधिक पुष्टि करता है :—

१. स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।
२. जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु।
३. रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु।
४. दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंघैः।
५. इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा।

मेघदूत और रामायण के श्लोकों में भी कुछ अंशों तक घना साम्य दिखलायी पड़ता है :—

१. यास्यत्यूरुः सरसकदलीगर्भगौरश्चलत्वम्।
२. त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शंके मृगाक्ष्याः।
मीनक्षोभाच्चलकिसलयश्रीतुलामेष्यतीति॥
३. जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीवान्यरूपाम्।
४. दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
५. प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।
६. पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति।
६. नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे।
८. अंगेनांगं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
साम्रेणास्रद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कंठितेन
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती।
९. स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्॥
१०. राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्याभ्यवर्षन्मुखानि। (मेघदूत)

१. प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या, रामंपुरस्तात् स्थितमाचचक्षे।
२. प्रास्पंदतैकं नयनं सुकेश्या, मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम्।
३. हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरंपरया निपीड्यमाना।
४. सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना।
५. निलीमानविहगैर्निमीलाद्भिश्च पंकजैः।
विकसन्त्या च मालत्या गतोस्तं ज्ञायते रविः॥

६. वाहि वात ! यतः कान्तां तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश।
७. दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः।
धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति॥
८. सा प्रकृत्यैव तन्वंगी तद्वियोगाच्च कर्शिता।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्यैव तनुतां गता॥

९. क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां नियतितामिव॥
१०. शरान्मुमोचाशु हरीश्वराचले
बलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे। *(रामायण)*

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस तरह से कालिदास ने वाल्मीकि की रामायण से राम-कथा, अभिज्ञान आदि बातों को लिया है, उसी तरह से मेघदूत के स्रोत को भी वहीं ढूँढ़ा है। इसके लिए वेद, पुराण और विदेशी साहित्य की छानबीन करना उचित नहीं प्रतीत होता। परन्तु मेरे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि कालिदास ने वाल्मीकि-रामायण का अनुकरण किया है। मेरा तर्क तो मात्र इतनी-सी बात की पुष्टि के लिए ही है कि मेघदूत की रचना करते समय कालिदास के सामने रामायण का हनुमद्दूत-प्रसंग अवश्य ही था। यहाँ पर इतना कह देना अनुचित न होगा कि वाल्मीकि द्वारा रोपित वृक्ष को कालिदास ने जिस प्रकार बढ़ाया तथा शीतल और सुखद बनाया है, वह सर्वथा स्तुत्य है। यदि वाल्मीकि की 'रामायण' ब्रह्म-कमंडलु के समान है, जिसमें सुरसरिता का सच्चा स्वरूप सुरक्षित था तो कालिदास का मेघदूत उस भागीरथी के समान है जिसके शीतल और पापहारी पय से लाखों-करोड़ों जीवों को आनन्द एवं अमरता की प्राप्ति होती है। मेघदूत में जिस माधुर्य तथा लालित्य के दर्शन होते हैं, वह रामायण के हनुमद्दूत-प्रसंग में स्वप्न-लभ्य ही हैं। कालिदास की रस-पयस्विनी के कोमल कल-कल से जिस

हृदयाह्लादिनी मधुरिमा की सृष्टि होती है, वह वहां कहां ? यही कारण है कि मेघदूत के अनुकरण पर जितने ग्रन्थ लिखे गये उतने अन्य किसी काव्य के अनुकरण पर नहीं।

जहां तक ग्रन्थ के लालित्य का प्रश्न है, इसकी अद्वैतता असंदिग्ध है। इसका एक-एक पद पाठक के हृदय में ऐसी गुदगुदी पैदा कर देता है, जो पर्याप्त समय तक अपने आधिपत्य की गौरव-गरिमा पर अट्टहास करती रहती है। कालिदास ने किसी रसज्ञ द्वारा खुली-जघना नारी के न तजने की बात कह कर मानो रसिक पाठकों द्वारा 'मेघदूत' की कविताओं को हृदय से अपनाने और न त्यागने की ही व्यंजना की है। 'मेघदूत' में प्राप्त काम की ललाम गाथा उसे कामरूप बना देती है! अन्तर और बाह्य, प्रकृति के दोनों रूप काममय हैं। विलास के अच्छे से अच्छे और उत्तेजक से उत्तेजक साधन इसमें मिल जाते हैं। वैभव की जो अभिराम छटा 'मेघदूत' में है, वह क्वचित् लभ्य ही है। अलका के ऐश्वर्य में निस्सन्देह उज्जयिनी की सुगन्धि फैली हुई है।

शृङ्गार एवं अध्यात्म की एक साथ अवर्णनीय नियोजना के कारण इसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। आराध्य के प्रति अपार आस्था से काव्य का प्रत्येक पद आशा की किरणों से निखरा हुआ है। वास्तव में 'मेघदूत' किसी निराशावादी प्रेमी का आंसू नहीं, आशावादी वियोगी की व्यथा-गाथा है। इसमें वेदना की कसक-मसक मिलती है, विरह की चमक-दमक नहीं। प्राकृतिक सुषमा, सरस मानवीय अनुभूति, परिस्थिति जन्य प्रकृति-चित्र, कवि-सुलभसुकुमार संवेदन शीलता, सप्राण मानवीयता, अगाध राष्ट्रीयता, वस्तुविन्यासगत प्रवीणता, पदयोजना की उपयुक्तता, मूर्त्तिविधान की सरसता, शाब्दिक संगीत एवं ध्वनि की योजनागत कुशलता सुमधुर एवं भावपूर्ण सूक्ति-योजना, अनुपमेय काव्य-शक्ति तथा काव्य चतुरता और सराहनीय अलङ्कार विधान आदि विशेषताओं से 'मेघदूत' भरा हुआ है। कालिदास के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा इसकी भाषा भी अधिक प्रौढ़ और भावभीनी है। शब्द, भाव और रस इस काव्य में एक दूसरे को गति देते हुए चलते हैं। ऐसी कृति का पद्यानुवाद करना कितना कठिन कार्य है, यह किसी भी सहृदय पाठक एवं रसज्ञ श्रोता से छिपा हुआ नहीं है। फिर भी मैंने यथाशक्ति कवि की भावनाओं को अपने शब्दों में लाने का

प्रयास किया है। यदि मेरे इस कार्य से पाठकों को थोड़ा भी संतोष मिला तो मैं अपने आयास को स्वागतार्ह समझूंगा।

इस पुस्तक को लिखते समय मैंने बहुत से विद्वानों की रचनाओं से सहायता ली है। इसका प्रकाशन तो आदरणीय डॉ० जगदीश चन्द्र जैन जी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद का ही फल है। डॉ० मो० दि० पराड़कर जी ने इसे आद्योपान्त पढ़ने की कृपा की एवं भाई हौसलाप्रसाद पाण्डे ने इसे समय-समय पर टाइप करने का कष्ट किया। इसके लिए मै इन मनीषियों एवं शुभेच्छुओं के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

अन्त में चौखम्बा संस्थान के व्यवस्थापक को धन्यवाद देना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिनके प्रेम के परिणामस्वरूप यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है।

—सुधाकर मिश्र

मेघदूतम्

पूर्वमेघः

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥

स्वामिशाप से गत-महत्व हो जिसकी वर्ष-अवधि थी
प्रिया-विरह से जो दुर्भर था, आत्मनियोगप्रमादी—[1]
किसी यक्ष ने किया वास रामाद्रि-आश्रमों[2] *में जा*
सीता-मज्जन से पवित्र[3] *जल, शीतल छाया जिनकी ।*

अपने काम में प्रमाद करने से प्रिया के विरह से दुःसह और एक साल तक अनुभव किये जानेवाले स्वामी के शाप से महत्त्वहीन होकर किसी यक्षने सीताजीके स्नानोंसे पवित्र जलवाले तथा घने नमेरुवृक्षोंसे युक्त रामगिरिके आश्रमोंमें निवास किया ॥ १ ॥

---

१. अपने कर्तव्य के प्रति एक बार ध्यान न देनेवाला ।

२. यहाँ पर कवि ने यक्ष के एक आश्रम में नहीं, अपितु अनेक आश्रमों में रहने की बात कही है । सच है, उन्माद अवस्था का व्यक्ति एक जगह नहीं रह सकता—

"वने रतिर्विरक्तस्याविरक्तस्य जने रतिः ।
अनवस्थितचित्तस्य न जने न वने रतिः ॥"

हमारे अनुवादकों ने इस पर प्रायः ध्यान नहीं दिया है । फलस्वरूप काव्य का सौन्दर्य नष्ट-सा हो गया है ।

३. सीताजी के स्नान करने से पवित्र ।

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥

कई महीने बिता वहाँ पर प्रिया-दूर-कामी[1] ने
स्वर्णवलय[2] गिरने से जिसकी थी सुनसान कलाई ।
करते हुए वप्रक्रीड़ा गज-सदृश मेघ को देखा
गिरि चोटी-सम्बद्ध,[3] प्रथम तिथि जब असाढ़ की आयी ।

उस पर्वत (चित्रकूट) पर प्रियाके वियोगसे दुर्बल होनेके कारण सुवर्ण-कङ्कणके गिरनेसे शून्य कलाईवाले पूर्वोक्त कामुक यक्षने आठ मास बिताकर आषाढके पहले दिनमें पहाड़की चोटीसे सम्बद्ध और वप्रक्रीडामें तिरछा दन्त-प्रहार करनेवाले हाथीके सदृश मेघको देखा ॥ २ ॥

---

१. अपनी प्रियतमासे वियुक्त कामी ।

२. सोने का कंगन ।

कामियों को अलंकार बहुत प्रिय होते हैं—

नाविदग्धः प्रियं ब्रूयान् नाकामी मण्डनप्रियः ।
निःस्पृहो नाधिकारी स्यात् स्फुटवक्ता न वञ्चकः ॥

३. पहाड़ की चोटी से लगे हुए ।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

काम-जनक जलधर के सम्मुख होकर किसी तरह से
यक्षराज[1]-अनुचर ने आँसू रोक देर तक सोचा ।
जाता है मन डोल देखकर मेघ सुखी नर[2] का भी
उसका क्या, आलिगन-प्यासी प्रिया दूर हो जिसकी ।

कुबेरके भृत्यने आँसू रोककर उत्कण्ठाकी उत्पत्ति करनेवाले उस मेघके सामने बड़े कष्टसे रहकर बहुत समय तक चिन्ता की। जब मेघका दर्शन होनेपर सुखीका चित्त भी विकृत हो जाता है तो कण्ठमें आलिङ्गन करनेकी इच्छा रखनेवाली प्रियाके दूर रहनेपर फिर क्या कहना है ? ॥ ३ ॥

१. कुबेर ।
२. प्रियतमा के साथ रहनेवाला पुरुष ।

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

प्रियाप्राणरक्षाकामी[1] ने देख निकट सावन को
जलधर से अपना मंगल-संदेश भेजना चाहा ।
नये कुटज-कुसुमों[2] का देकर अर्घ्य[3] इसीसे हर्षित
सादर स्वागत किया प्रणयपरिपूर्ण वचन से उसका[4] ॥

श्रावण मासके निकट होनेपर प्रियाकी जीवनरक्षा चाहनेवाले उस यक्षने मेघद्वारा अपनी कुशलवार्ता भेजनेकी इच्छासे नये गिरिमल्लिकापुष्पोंसे मेघकी पूजा कर प्रसन्नतापूर्वक प्रणय-भरे वचनोंसे उसका स्वागत किया ॥ ४ ॥

---

१. प्रिया की प्राण-रक्षा चाहनेवाला ।
२. गिरिमल्लिका ।
३. अभ्यागत के स्वागतार्थ दिये हुए जल, पुष्प, अक्षत आदि ।
४. मिलाइये—"बन्धुप्रीत्या किमपि मघवा स्वागतेनाजुहाव ।"
—भ्रमर-संदेश—महालिङ्ग शास्त्री ।

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

कहाँ मेघ, जो है समूह जल, ज्योति, धूम, मारुत का
और कहाँ सन्देश अर्थ जो प्रेष्य[1] चतुर प्राणी से।
की याचना यक्ष ने उससे यह सब बिना बिचारे
जड़-चेतन में भेद नहीं कामातुर कर पाते हैं।[2]

कहाँ तो धूआँ, तेज, जल और वायुके समुदायसे उत्पन्न जड मेघ और कहाँ कुशल इन्द्रियोंसे युक्त प्राणियोंसे भेजे जानेवाले सन्देशके वचन? उत्कण्ठाके कारण इस बातका विचार न कर यक्षने मेघसे याचना की; क्योंकि कामसे आकुल जन चेतन और अचेतनोंके विवेकमें स्वभावसे ही दीन हो जाते हैं ॥ ५ ॥

१. भेजने योग्य।
२. इस श्लोक के अन्तिम पद का अनुकरण अनेक दूत-काव्यों में किया गया है—
(क) दूतं मोहात् पवनसुहृदं प्राहिणोदश्रुनेत्रः।
प्रायो मोहो भवति भविनां बोधशून्यत्वहेतुः॥ —पवन. वादि.
(ख) विश्लेषेण क्षपितमनसां मेघशैलद्रुमादौ।
याच्ञादैन्यं भवति किमुत क्वापि संवेदनार्हे॥ —हंस संदे. वेदा.

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

जन्म लिया है विश्वविदित कुल पुष्कर-आवर्तक[1] में
कामरूप, प्रिय पुरुष इन्द्र के, तुम्हें जानता हूँ घन !
करता हूँ याचना भाग्यवश-प्रियादूर मैं; तुमसे
भली अधूरी मांग बड़ों से, पूरी नहीं अधम से ।[2]

हे मेघ ! मैं जानता हूँ कि तुम लोकविख्यात पुष्कर और आवर्तक नामवाले मेघोंके कुलमें उत्पन्न और अपनी इच्छाके अनुसार रूप लेनेवाले तथा इन्द्रके प्रधान पुरुष हो। इस कारणसे दुर्भाग्यवश पत्नीसे बिछुड़ा हुआ मैं तुमसे याचना करता हूँ, क्योंकि अधिक गुणवाले पुरुषसे की गई याचना निष्फल होनेपर भी कुछ अच्छी है। परन्तु निर्गुण पुरुषसे की गई याचना सफल होनेपर भी अच्छी नहीं होती है ॥ ६ ॥

१. असाधारण वृष्टि करनेवाले प्रलयकालीन मेघ।

२. मेघदूत के यक्ष की तरह ही अन्य दूतकाव्यों के नायकों ने अपने-अपने सन्देश-वाहकों की प्रशंसा की है—

शोकध्वान्तं मुहुरपि निराकुर्वती सर्वतो मे
मूर्तिः सेयं तव खगपते भाति चान्द्री कलेव ॥ मयूर-सन्देश—उदय

जातं भद्रं त्रिदशनगरीकल्पवाटीनिकुञ्जे
जानामि त्वां मनसिजधनुर्ज्यालिताभृङ्गवर्य्यम् ॥
—भ्रमरसन्देश—महालिंग शास्त्री

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद ! प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

तुम पयोद ! संतप्तों की हो शरण, पास प्रेयसि के
धनद-कोप-विरही[1] इस जन का ले जाओ संदेशा ।[2]
बाह्य-बाग में वर्तमान शंकर-शिर की ज्योत्स्ना से
उज्ज्वल महलोंवाली अलका में है तुमको जाना ।

हे मेघ ! तुम सन्तापयुक्तोंके रक्षक हो, इस कारणसे कुबेरके कोपसे पत्नीसे बिछुड़े हुए मेरे सन्देशको प्रियाके समीप ले जाओ। बाहरके उद्यानमें विद्यमान शिवजीके शिरमें स्थित चाँदनीसे उज्ज्वल भवनोंसे सम्पन्न अलका नामकी पुरीमें तुम्हें जाना है ॥ ७ ॥

---

१. कुबेर के क्रोध से वियुक्त ।

२. 'घनानन्द' का निम्नलिखित पद इसी के अनुकरण पर लिखा गया प्रतीत होता है—

परकाजहि देहकों धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सज्जनता सरसौ ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहिँ लै बरसौ ॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः ।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

देखेंगी केशाग्र उठाकर, तुम्हें गगन-मगचारी !
प्रियागमन-विश्वास भरी आश्वस्त पथिक-वनिताएँ ।
मुझ जैसे परतंत्र पुरुष को छोड़, देखकर तुमको—
और कौन जो विरह-क्षीण बाला[1] की करे उपेक्षा ?

हे मेघ ! आकाशमार्गसे विचरण करनेवाले तुमको पथिकोंकी स्त्रियां पतिके आगमनके विश्वाससे आश्वस्त होकर केशोंके अग्रभागको ऊँचा कर देखेंगी। तुम्हारे आगमनकालमें मेरे समान पराधीन पुरुषको छोड़कर और कौन व्यक्ति वियोगसे दुर्बल अपनी पत्नीकी उपेक्षा करेगा ? ॥ ८ ॥

१. यक्ष को विश्वास है कि उसकी प्रिया उसके विरह में दुर्बल हो गयी होगी।

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥ ९ ॥

प्रेरित करता मंद-मंद है[1] पवन, तुम्हारे जैसा
वाम भाग में गर्वित चातक मृदु-रव बोल रहा है ।
जान कि गर्भाधान-समय हो मालाकार गगन में
नेत्र-सुभग संश्रय[2] निश्चय ही लेंगी बक-बालाएँ ।

अनुकूल वायु मन्दगतिवाले तुमको धीरे धीरे प्रेरणा कर रहा है । तुम्हारे वाम भागमें स्थित यह पपीहा गर्वके साथ मधुर शब्द कर रहा है। गर्भाधानके उत्सवमें परिचय होनेसे आकाशमें पङ्क्तिबद्ध होकर बगुलियाँ नेत्रोंमें सुन्दर प्रतीत होनेवाले तुम्हारा आश्रय अवश्य कर लेंगी ॥ ६ ॥

१. बादल ! जिस ओर तुमको जाना है, उसी दिशा में तुमको ले जानेवाला पवन भी बह रहा है । इससे तुम्हें जाने में बहुत सहायता मिलेगी । यह एक अच्छा शकुन है ।

२. आश्रय । यहाँ पर कवि ने मेघ का कामी रूप में सौभाग्य बताया है । नारियाँ स्वयं आकर सेवा करें, इससे बढ़कर कामी का कौन-सा सौभाग्य हो सकता है ?

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

गनती दिवस, भरी आशा, निज पतिव्रता भाभी को
लोगे देख अवश्य मेघ ! अविछिन्न[1] चाल से जाकर !
प्रेमपूर्ण, सुकुमार सुमन ज्यों सद्यःपाति[2] विरह में
ललना-जीवन को आशा का बन्धन[3] रहता रोके ।

हे मेघ! विरहके अवशिष्ट दिनोंकी गणनामें व्यग्र और मेरे आगमनकी आशासे प्राणधारण करनेवाली प्रतिव्रता अपनी भौजाई (मेरी पत्नी) को तुम अविच्छिन्न गतिसे अवश्य देख लोगे, क्योंकि आशारूप बन्धन प्रेमपूर्ण, फूलके समान सुकुमार तथा विरहमें तत्क्षण नष्ट होनेवाले अबलाओंके जीवनको अकसर रोक रखता है ॥ १० ॥

---

१. लगातार ।

२. तुरन्त नष्ट होनेवाला ।

३. आशारूपी बन्धन :—
"आशापाशैः सखि नवनवैः कुर्वता प्राणबन्धम् ।"—उद्धवदूत

अथवा

अशातन्तुर्न च कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः
प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्या य एकः ।।—मालतीमाधव

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ।
आ कैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥११॥

जो शिलीन्ध्र[1]मय, सफल धरा को करने में सक्षम है
मेघ ! तुम्हारे श्रवण-सुभग उस संगर्जन को सुनकर ।
ले करके मृणाल-कण मुख में, मान-सरोवर-गामी[2]
राजहंस होंगे गिरि तक नभ मे सहचारी तुम्हारे ।

हे मेघ ! जो कि पृथिवीको शिलीन्ध्रपुष्पोंसे युक्त और सफल करनेको समर्थ है, कानोंको सुख देनेवाले तुम्हारे उस गर्जनको सुनकर मानससरोवरमें जानेके लिए उत्कण्ठित राजहंस मार्गमें खानेके लिए मृणालके अग्रभागके टुकड़ोंको लेकर आकाशमें कैलास पर्वत तक तुम्हारे सहचर होंगे ॥ ११ ॥

१. वर्षा के आरम्भ में उगनेवाला पुष्प । इसे लोक कुकुरमुत्ता कहते हैं । यह जहाँ उगता है वह भूमि उपज के योग्य मानी जाती है :—
"कालाभ्रयोगादुदिताः शिलीन्ध्राः सम्पन्नसस्यां कथयन्ति धात्रीम्" ।
निमित्तनिदान :

२. मानसरोवर जाने वाले ।

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

जन-आराध्य,[1] राम-चरणांकित मध्य भाग है जिसका
लो आज्ञा, प्रिय मित्र[2] उच्च इस गिरि से कर आलिंगन ।
समय-समय पा योग तुम्हारा, चिर वियोग के कारण
उड़ते उष्ण बाष्प से जिसका प्रेम व्यक्त होता है ।

हे मेघ ! लोकके अभिवादनके योग्य श्रीरामके चरणन्यासोंसे मध्यभागोंमें चिह्नित प्रिय मित्र उन्नत रामगिरि पर्वतको आलिङ्गन कर यात्राकी आज्ञा लो । प्रतिवर्ष वर्षाकालमें तुम्हारे सम्पर्कको पाकर बहुत समयके वियोगसे उत्पन्न उष्ण बाष्प (भाप वा आँसू) छोड़नेवाले जिस (रामगिरि पर्वत) के प्रेमकी अभिव्यक्ति होती है ॥ १२ ॥

---

१. लोक द्वारा पूजा के योग्य ।
२. अपने प्रिय मित्र ।

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद ! श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य ॥१३॥

अपने प्रस्थानानुकूल[1] पथ तब तक सुनो पयोधर !
कहता हूँ, फिर कर्णपेय[2] संदेश मेरा सुन लेना ।
जिसके शिखरों पर पद रख-रख जाओगे थकने पर
दुर्लभ बन-बनकर, झरनों के हलके जल[3] को पीकर ।

हे मेघ ! तुम पहले मुझसे अपनी यात्राके अनुकूल मार्गका श्रवण करो। तदनन्तर अतिशय तृष्णासे सुननेके योग्य मेरे सन्देशको सुन लोगे। जिस मार्गमें यात्राके परिश्रमसे बहुत ही शक्तिहीन होते हुए पर्वतोंमें पदन्यास कर अत्यन्त दुर्बल होकर स्रोतोंके हलके जलका उपयोग करके जाओगे ॥ १३ ॥

१. जाने योग्य ।
२. मधुर ।
३. वैद्यों का कहना है कि यह जल आरोग्यवर्द्धक होता है ।

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः।
स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥

ले जाता है पवन शृंग क्या! उन्मुख बनी, तुम्हारा
साश्चर्य साहस देखेंगी मुग्ध-सिद्ध-सुन्दरियां।
दिग्-नागों के स्थूल शुण्ड-आक्षेपों[1] से पथ में बच
सरस-निचुल[2]-प्रदेश से उड़ना नभ में उत्तर-मुख हो।

हे मेघ! तुम्हारा उत्साह देखकर सिद्धोंकी सुन्दरियाँ मोहसे "वायु पर्वतकी चोटी उड़ा ले जा रहा है क्या?" ऐसा विचार कर अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हो जायेंगी। तुम आर्द्र स्थलवेतसोंसे सम्पन्न इस आश्रमसे आकाशमार्गमें बड़ी बड़ी सूँड़ोंके आक्रमणसे बचते हुए अलकापुरीमें जानेके लिए उत्तराभिमुख होकर आकाशमें उड़ जाओ॥ १४॥

१. प्रहार।
२. पानी में उगनेवाला एक पौधा।

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत् पुरस्ताद्-
वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुष्खण्डमाखण्डलस्य ।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥१५॥

इन्द्रचाप यह मणियों के आभामिश्रण-सा सुन्दर
आगे वल्मीकाग्र[1] भाग से दिखलायी पड़ता है
जिससे श्याम शरीर तुम्हारा शोभा प्राप्त करेगा
मोरपंख से, गोपवेष प्रभविष्णु[2] विष्णु-सी, भारी[3] ।

हे मेघ ! पद्मराग आदि मणियोंकी कान्तियोंका संमिश्रणके समान दर्शनीय इन्द्रधनु, आगे वल्मीक (बांबी) के अग्र भागसे दिखाई पड़रहा है । जिससे श्याम वर्णवाला तुम्हारा शरीर उज्ज्वल कान्तिवाले मयूरपिच्छसे गोपवेष धारण करनेवाले कृष्णके शरीरके समान अतिशय शोभा प्राप्त कर लेगा ॥ १५ ॥

१. बांबी का अगला भाग ।
२. तेजपूर्ण ।
३. कृष्ण ।

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यःसीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण॥ १६॥

'कृषिफल है आधीन तुम्हारे' सोच भरेंगी तुमको
भ्रूविकार अनभिज्ञ प्रेम-नयनों में पुर-बालाएँ।
सद्यः कर्षित[1] मालक्षेत्र[2] को सुरभित कर वर्षा से
बिता समय कुछ, तीव्र वेग से उत्तर को ही जाना।

हे मेघ! खेतीका फल तुम्हारे अधीन है, इसलिए स्वाभाविक स्नेहसे आर्द्र तथा भ्रूविलासोंसे अनभिज्ञ गाँवकी स्त्रियोंकी आँखोंसे आदरपूर्वक देखे जाते हुए तुम तत्क्षण हल चलाये गये "माल" नामके ऊँचे क्षेत्रको वृष्टिसे खुशबूदार बनाकर कुछ समयके अनन्तर शीघ्र गतिका अवलम्बन कर फिर उत्तर-मार्गसे ही चले जाओ॥ १६॥

१. तुरंत जोते हुए।
२. उच्च प्रदेश।

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥

पथ-थकान से चूर, बरस 'वन-आग' बुझानेवाले
तुमको आम्रकूट[1] लेगा निश्चय ही शिर-माथे पर
करता नहीं निराश पास आने पर कभी कृपण भी
समझ पूर्व उपकार, मित्र को, ऐसों[2] का क्या कहना ?

हे मेघ ! आम्रकूट पर्वत मूसलधार वृष्टिसे दावाग्निको बुतानेवाले तथा मार्गपरिश्रमसे क्लान्त तुम्हें अपनी चोटीसे भलीभाँति धारण कर लेगा, क्योंकि क्षुद्रपुरुष भी आश्रयके लिए अपने पास मित्रके आनेपर पहलेके उपकारकी अपेक्षा कर विमुख नहीं होता है तो जो उस प्रकार ऊँचा है उसका क्या कहना है ? ॥ १७ ॥

---

१. अमर कंटक ।
२. जो इतने महान् हैं ।

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥

लसित पक्कफल वन-रसाल से ढँका पार्श्व है जिसका
श्यामशरीर[1] चढ़ोगे जब तुम, उस गिरि के शिखरों पर ।
मध्यनील, सित अपर भाग वह, भू-उरोज ज्यों होकर
निश्चय दशा देव-मिथुनों से दर्शनीय पायेगा ।

हे मेघ ! पकेहुए फलोंसे शोभित होनेवाले वनके आम्रवृक्षोंसे आच्छादित पार्श्वदेशोंसे युक्त आम्रकूट पर्वतके शिखरपर स्निग्ध केशबन्धनके सदृश तुम जब चढ़ोगे तब वह (पर्वत) मध्यभागमें कृश (पतला) और अन्यत्र विस्तारके साथ सफेद पृथिवीके स्तनके समान होता हुआ देवदम्पतियोंसे दर्शनीय अवस्थाको निश्चय ही प्राप्त करेगा ।। १८ ।।

---

१. इसके लिए कालिदासने "स्निग्धवेणीसवर्णे" लिखा है, अर्थात् तेल इत्यादि से संवारी हुई वेणीके रंगके समान रंगवाला ।

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१९॥

वनचर-वनिता-मुक्त-कुंज[1] वाले गिरि पर रुक पल भर
फिर वर्षा से तेज चाल, तर अपर मार्गको मनहर ।
देखोगे पाषाण-विषम-धर[2] विन्ध्यक्षेत्र में फैली
गज-शरीर में रचित प्यार-रेखा सी तुम रेवा[3] को ।

हे मेघ ! किरातोंकी रमणियोंसे उपभुक्त लतागृहोंसे युक्त आम्रकूट पर्वतपर कुछ समय तक विश्राम कर जलकी वृष्टिसे अतिशीघ्र गतिवाले होकर आम्रकूटके अनन्तरवर्ती मार्गको लाँघकर तुम पत्थरोंसे ऊँच-नीच विन्ध्याऽचलके प्रत्यन्तपर्वतमें फैली हुई नर्मदाको हाथीके शरीरमें रचनाविशेषोंसे निर्मित श्रृङ्गाररेखाके समान देखोगे ॥ १६ ॥

१. वनवासियोंकी औरतोंने जिनमें रस-क्रीड़ा की है ।
२. ऊँच-नीच पत्थर वाले ।
३. रेवा (नर्मदा) का दर्शन, गंगास्नानके समान पापनाशक होता है :—
"गंगास्नानेन यत्पुण्यं तद्रेवादर्शनेन च ।"

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।
अन्तःसारं घन ! तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥२०॥

वन-गज-मद-वासित, जामुन से रुका मार्ग है जिसका
बरस[1] कि उस नर्मदा-नीर को तात ! साथ ले जाना ।
सजल तुम्हें दोलित करने में वायु न सक्षम होगा
कंपनीय सब रिक्त[3], पूर्णता[4] ही गौरव लाती है ।

हे मेघ ! तुम वृष्टि करके वनके हाथियोंके मदोंसे सुगन्धित तथा जामुनके कुञ्जोंसे उपरुद्ध वेगवाले नर्मदाजलको लेकर जाओ । इस प्रकार भीतर सारवाले (जलयुक्त) तुमको वायु आन्दोलित नहीं कर सकेगा, क्योंकि सभी रिक्त (रीता) पदार्थ हलका होता है और पूर्णता गौरवके लिए होती है ॥ २० ॥

---

१. वृष्टि करनेसे जब तुम्हारा जल समाप्त हो जाय ।
२. हल्का ।
३. खाली, सत्त्वहीन ।
४. धन आदि से भरा हुआ, सत्त्वशाली ।

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
दग्धारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥२१॥

कृष्ण-पीत, उत्पन्न-अर्द्धरज भू-कदम्ब को पाकर
खा जलप्राय[1] धरा-कदली के नये-नये मुकुलों को।
अतिशय सुरभि-भरी वसुन्धरा की सुगन्धि को वन में
सूंघ-सूंघ [2]सारङ्ग! तुम्हारा सूचित पंथ करेंगे।

हे मेघ! हाथी अर्धविकसित किञ्जल्कोंसे हरे और कृष्णलोहित वर्णसे युक्त स्थलकदम्ब-पुष्पको देखकर तथा जलप्राय स्थानमें खिलेहुए भूमिकदलियोंके नये कुड्मलोंको खाकर जङ्गलोंमें अधिक सुगन्धित पृथ्वीके गन्धको सूँघकर जलबिन्दुओंको बरसानेवाले तुम्हारे मार्गको सूचित करेंगे ॥ २१ ॥

१. कछार।

२. सारङ्ग—व्याख्याकारों ने सारङ्ग के चारों—भ्रमर, हरिण, चातक और हाथी—अर्थों को प्रत्येक पंक्ति में उपयुक्त बताया है।

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥

देख कि वर्षा-बिन्दु-ग्रहण में परम निपुण चातक को
श्रेणीभूत[1] बलाकाओं को संख्या से दर्शाते—
सिद्ध[2], तुम्हारे गर्जन से कम्पित प्रिय सहचरियों के
शीघ्रालिंगन सुख का अनुभव कर, सम्मान करेंगे ।

हे मेघ ! वृष्टिके जलबिन्दुओंके ग्रहणमें निपुण चातकोंको देखतेहुए तथा पङ्क्तिबद्ध बगुलियोंको एक, दो, तीन इस प्रकारसे गणना कर दिखाते हुए सिद्धलोग तुम्हारे गर्जनके समयमें कम्पयुक्त प्रिय सहचरियोंके शीघ्रतापूर्वक किये गये आलिङ्गनोंका अनुभव कर तुम्हारा संमान करेंगे ।

१. पंक्तिबद्ध ।
२. एक देव-जाति ।

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते-पर्वते ते ।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥२२॥

मेरे प्रिय-हित तीव्र-गमन-इच्छुक भी कुटज-सुरभि से
देख रहा हूँ गिरि-गिरि पर मैं सखे ! विलम्ब तुम्हारा ।
किसी तरह से शीघ्र गमन की करना तुरत व्यवस्था
सजल नयन[1], स्वर से स्वागत कर मोर चलें जब आगे ।

हे मित्र ! मेरे अभीष्ट सम्पादनके निमित्त जल्दी जानेके लिए इच्छा करनेपर भी कुटज-पुष्पोंसे सुगन्धित प्रत्येक पर्वतपर तुम्हारा कालक्षेप होगा मैं ऐसी संभावना करता हूँ। हर्षाश्रुओंसे भरे नेत्रोंवाले मयूर अपने कण्ठस्वरोंसे स्वागत कर तुम्हारी अगवानी करेंगे; तुम भी किसी प्रकारसे शीघ्र जानेके लिए उद्योग करो ॥ २२ ॥

१. हर्षाश्रुसे भरे नेत्र ।

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥२३॥

उपवनके प्राचीर बनेंगे खिले केतकी पीले
ग्राम-मार्ग संकीर्ण काग-नीड़ों की संरचना से।
होंगे श्याम, फलों से जंबूवन दशार्ण[1] के जलधर !
पास देखकर तुम्हें, हंस कुछ दिन ही वहाँ रमेंगे।

हे मेघ ! तुम्हारे निकट आनेपर दशार्णदेश (छत्तीसगढ़) में बगीचे केतकीके फूलोंसे पीले प्राचीरोंसे युक्त, गाँवके रास्तामें पेड़, कौए आदि पक्षियोंके घोसलोंकी रचनासे सङ्कीर्ण और जामुनोंके वन पकेहुए फलोंसे श्याम वर्णवाले होंगे इस प्रकार वहाँ हंस भी वर्षाके आरम्भको देखकर कुछ ही दिनोंतक ठहरेंगे ॥ २३ ॥

---

१. छत्तीसगढ़।

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा ।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥२४॥

प्रिय ! दशार्ण की विदित राजधानी विदिशा में जाकर !
कामुकता के सभी फलों को तत्क्षण प्राप्त करोगे ।
पी लोगे तुम कल निनादिता वेत्रवती के रस को
सभ्रूभंग नायिकाऽधरवत्[1], मधुर-मधुर कर गर्जन ।

हे मेघ ! दिशाओंमें विदिशा नामसे प्रसिद्ध दशार्ण देशकी राजधानीमें पहुँचकर उसी क्षण तुम कामुकताके संपूर्ण फलको प्राप्त कर लोगे । क्योंकि तुम वहाँपर मधुर और तरङ्गित वेत्रवती नामकी नदीके जलको भ्रुकुटीवाली नायिकाके अधरके समान तटके प्रान्तमें मधुर गर्जन करनेके साथ-साथ पान कर लोगे ॥ २४ ॥

१. तिरछी भृकुटिवाली नायिकाके अधरके समान ।

यहाँपर वेत्रवतीके अधररसके पीनेकी बात कहकर कविने मेघ की कामुकता बतायी है क्योंकि कामियोंको अधर-रसका स्वाद भोगकी अपेक्षा अधिक प्रिय होता है :—

"कामिनामधरस्वादः सुरतादतिरिच्यते ।"

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥२५॥

हित विश्राम, कदम्ब कुसुम से, पा सम्पर्क तुम्हारा
पुलकित सा जो उस 'नीचैः'[1] गिरिपर अधिवास बनाना ।
वेश्या-रतिक्रीड़ा-परिमल-उद्गारक[2] गिरि-गह्वर[3] से
करता है जो प्रकट जवानी, उत्कट नागरिकों की ।

हे मेघ ! विदिशाके समीपमें विश्रामके लिए फूलोंवाले कदम्बवृक्षोंसे तुम्हारे सम्बन्धसे रोमाञ्चितके समान नीचैः नामके पर्वतमें निवास करो। जो पर्वत वेश्याओंसे रतिक्रीडाओंमें विमर्दित पुष्प आदिकी सुगन्धिको प्रकट करनेवाली गुफाओंसे नागरिकोंके उत्कट तारुण्य (जवानी)को प्रकट करता है ॥ २५ ॥

१. विदिशाके पासके एक पर्वतका नाम ।
२. वेश्याओंकी रतिक्रीड़ामें विमर्दित पुष्पोंकी गंधको व्यक्त करनेवाला ।
३. पहाड़ की गुफा ।

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥२६॥

कर विश्राम, अरण्य-नदी-तट उपजे उद्यानों के-
मुकुलों को मागधी कुसुम के सींच नये जल-कण से ।
जिनके कर्ण-कमल मुरझाये स्वेद-निवारण-रुज[1] से-
कुसुम चायिनी बालाओं को छाया देकर जाना ।

हे मेघ ! नीचैः नामके पर्वतमें विश्राम करके वनकी नदियोंके तटोंमें उत्पन्न बागीचोंके जूहीके मुकुलोंको नये जलके बिन्दुओंसे सेचन कर कपोलोंपर पसीना हटानेसे उत्पन्न पीडासे जिनके कर्णभूषण-कमल मुरझाये होंगे, फूलोंको तोड़नेवाली उन स्त्रियोंके मुखोंको छाया देनेसे कुछ समय तक परिचित होतेहुए जाओ ॥ २६ ॥

१. कपोलों के पसीने को पोछने से पैदा होनेवाली पीड़ा ।

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥२७॥

उत्तर जाते हुए मार्ग तिरछा है यदपि तुम्हारा
तो भी उज्जयिनी के ऊँचे महल छोड़ मत जाना ।
चल-कटाक्ष-सम्पन्न[1] पौर वनिताओं के नयनों से
चपला-चमक भीत जो, क्रीड़ा-विमुख, रहोगे वंचित[2] ।

हे मेघ ! उत्तर दिशामें अलकापुरीके लिए प्रस्थान करनेवाले तुम्हारा मार्ग यद्यपि टेढ़ा होगा, तथापि उज्जयिनीके प्रासादोंके ऊर्ध्व भागोंका परिचय करनेमें पराङ्मुख मत होना। वहाँपर बिजलीके चमकनेसे डरनेवाली चञ्चल कटाक्षोंसे सम्पन्न पौरसुन्दरियोंके नेत्रोंसे क्रीडा नहीं करोगे तो तुम वञ्चित हो जाओगे ॥ २७ ॥

१. चंचल कटाक्षों से युक्त ।

२. यदि तुम पौरवनिताओं के मनोहर नेत्र-विभ्रमका अनुभव किये बिना ही आगे जाओगे, तो समझ लेना कि एक अपूर्व सुखसे दूर रह गये ।

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥२८॥

वीचि-क्षोभ[1] से मुखर विहग हैं बने मेखला[2] जिसकी
गिरने से मनहर, दिखलाती भँवर-नाभि को बहती ।
पथ मे उस निर्विन्ध्या के रस का अनुभव कर लेना
प्रिय के प्रति कान्ता का विभ्रम पहला प्रणय-वचन है ।

हे मेघ ! मार्गमें तरङ्गके चलनेसे शब्द करनेवाले पक्षी ही जिसकी करधनीके समान हैं, पत्थरोंपर गिरनेसे मनोहरताके साथ बहनेवाली तथा नाभिके सदृश भँवरको दिखलानेवाली निर्विन्ध्या नामकी नदीके पास जाकर उसके रस (जल वा श्रृङ्गार) को ग्रहण करनेमें अन्तरङ्ग बनो । क्योंकि स्त्रियोंकी प्रणयी जनोंमें श्रृङ्गार-चेष्टा ही प्रथम प्रणयवाक्य हो जाता है ॥ २८ ॥

---

१. लहरोंकी आवाज ।
२. करधनी ।

वेणीभूतप्रतनुसलिलाऽसावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।
सौभाग्यं ते सुभग ! विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥२९॥

जिसका पीला वर्ण हुआ है जीर्ण पर्ण गिरने से
तट तरुओं के, वेणीवत लघु-जलवाली सरिता वह ।
विरह दिशा से जो अतीत सौभाग्य[1] तुम्हारा कहती ।
जैसे तजे कृशत्व युक्ति चाहिए तुम्हें ही करनी ।

हे सौभाग्यशालिन् मेघ ! वेणीके समान थोड़ा जलवाली तीरमें उगेहुए वृक्षोंसे गिरनेवाले सूखेहुए पत्तोंसे पीला वर्णवाली अतएव विरहकी अवस्थासे प्रवासस्थित तुम्हारे सौभाग्यको प्रकाशित करतीहुई वह नदी (निर्विन्ध्या) जिस विधिसे कृशताको छोड़े उस विधिको तुम्हें ही करना चाहिए ॥ २९ ॥

१. प्रवासके समयका सौभाग्य । यक्ष बताना चाहता है कि जब तुम उससे दूर थे, वह तुम्हारे लिए तरसती थी । वियोगके थपेड़ों को सहती हुई प्रियतमा, पतिका रास्ता देखती हुई जीवन धारण करती रहे, इससे बढ़कर पुरुषका और कौन-सा सौभाग्य हो सकता है ?

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धा-
न्पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३०॥

पहुँच अवन्ती जहां वृद्ध जानते कथा उदयन[1] की,
हो जाने पर नष्ट पुण्य-फल धरा-प्राप्त प्राणी के-
शेष पुण्य से लाये उज्ज्वल स्वर्ग-शकल सी जलधर !
कथित-पूर्व सम्पन्न पुरी उज्जयिनी में भी जाना ।

हे मेघ ! जहाँके गाँवके बूढ़ेलोग उदयनकी कथाके जानकार हैं उस अवन्तिदेशमें पहुँचकर पुण्यफलके क्षीण होनेपर पृथ्वीमें आएहुए स्वर्गका उपभोग करनेवालोंके अवशिष्ट पुण्योंसे लाएगए उज्ज्वल स्वर्गके एक टुकड़े के समान पहले कही गयी सम्पत्तिसम्पन्न उज्जयिनी पुरीका अनुसरण करो ॥ ३० ॥

१. उज्जयिनीमें प्रद्योत नामके एक राजा थे। उनके पास इन्द्र द्वारा प्रदत्त एक कन्या थी, जिसका नाम वासवदत्ता था। प्रद्योत वासवदत्ताका विवाह संजय नामक राजासे करना चाहते थे। परन्तु वासवदत्ता चन्द्रवंशी सहस्रानीकके पुत्र उदयन अथवा वत्सराजको चाहती थी। जब यह बात प्रद्योतको मालूम हुई तो उन्होंने उदयनको कैद कर लिया। परन्तु कैदसे छूटनेपर उदयनने वासवदत्ताका हरण किया। उदयन कौशाम्बीका राजा था।

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥३१॥

सुबह सारसों के मदमय स्वर में भरते चटकारी
विकसित कमलों के छूने से गंध भरा सुखदायी ।
शिप्रावात पुनः क्रीड़ाहित अनुनय करनेवाले-
प्रणयी-सा जिस जगह नारि-रति लीला-श्रम हरता है ।

जिस उज्जयिनीमें प्रातःकालमें प्रस्फुट और मदसे अव्यक्त मधुर सारसोंके शब्दको फैलाताहुआ विकसित कमलोंके परमलके सम्पर्कसे सुगन्धित और सुख स्पर्शवाला शिप्रा नदीका वायु रमणकी प्रार्थनामें खुशामद करनेवाले प्रियतमके समान स्त्रियोंकी रतिक्रीडाके परिश्रमको दूर करता है ॥ ३१ ॥

(हारांस्तारांस्तरलगुटिकाङ्कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोकमात्रावशेषाः[1] ॥)

कोटि शुद्ध मुक्तावलियों को, शुक्ति और शंखों को
शष्पश्याम सुन्दर किरणों वाले मरकत मणियों को,
विद्रुम के टुकड़ों को लखकर जिसके बाजारों में
लगता है जलनिधि में केवल जल भर शेष बचा है।

जिस उज्जयिनीमें बाजारोंमें रक्खे गये मध्यभागमें महारत्नोंसे सुसज्जित करोड़ों असली मुक्तावलियोंको, शङ्खों और सीपियोंको, घासके समान हरे, ऊपर जानेवाली सुन्दर किरणोंसे सम्पन्न पन्ना नामके रत्नोंको तथा मूगोंके टुकड़ोंको देखकर समुद्रमें केवल जलमात्र बाकी रह गया है, ऐसा माळूम पड़ता है॥

१. प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः।

(प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।
अत्रोद्भ्रांतः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा-
दित्यागन्तून्रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः[1] ॥)

प्रिय पुत्री प्रद्योत नृपति की हरी यहाँ उदयन ने
सुन्दर ताल वृक्ष उपवन था यहाँ उसी राजा का,
यहाँ तोड़ खंभों को मदमय नलगिरि घूमा करता
ज्ञानी नर बहलाते मन थे यहाँ विदेशी जन के।

यहाँपर वत्सराज (उदयन) ने उज्जयिनीके महाराज प्रद्योतकी प्रियपुत्री वासवदत्ताका अपहरण किया था। यहाँपर उन्हीं प्रद्योतका सुनहरा तालवृक्षोंका वन था। इस स्थानपर नलगिरिनामक इन्द्रसे दिया गया प्रद्योतका हाथी मदसे बन्धनस्तम्भको उखाड़कर घूम रहा था, यहाँ कथाका जानकार पुरुष दूसरे देशसे आये हुए बान्धवोंका मनोविनोद करता है ॥

१. प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः ।

(पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तःप्रभेदात् ।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कः[1] ॥)

जहाँ अश्व हैं पत्रश्याम सूरज के घोड़ों जैसे
मद बरसाते तुम जैसे जिस जगह अचल से हाथी
योधा वीर दशानन सम्मुख रण में टिकने वाले
चन्द्रहास व्रणचिह्नों से आभूषित जिनके तन हैं।

हे मेघ ! जिस उज्जयिनीमें घोड़े पत्तोंके समान श्याम वर्णवाले और सूर्यके घोड़ोंके साथ स्पर्धा करनेवाले हैं। पर्वतके सदृश ऊँचे हाथी मद गिरनेसे तुम्हारे समान वृष्टि करनेवाले हैं। श्रेष्ठ योद्धा-लोग युद्धमें रावणके सम्मुख उठनेवाले और उसके खड्गके घावोंके चिह्नोंसे भूषणोंकी कान्तियोंका प्रत्याख्यान करनेवाले हैं॥

१. प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः ।

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा
लक्ष्मीं पश्यँल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥३२॥

वातायन से निकले केश-सुगन्धित-कर[1] धूपों से-
पुष्ट शरीर, गृह-शिखी-नर्तन का उपहार[2] उठाते ।
कुसुम-सुरभि, सुन्दरी पादलाली मय गुरु-महलों में
करना पथश्रम दूर देखते उज्जयिनी की शोभा ।

हे मेघ ! खिड़कियोंके मार्गोंसे निकलेहुए स्त्रियोंके केशोंको सुगन्धित करनेवाले धूपोंसे परिपुष्ट शरीरवाले तथा बन्धुके आगमनकी प्रीतिसे भवनके मयूरोंसे नृत्यरूप उपहार प्राप्त करतेहुए तुम फूलोंसे सुगन्धित सुन्दरियोंके चरणोंके लाक्षारागसे चिह्नित धनियोंके भवनोंमें उज्जयिनीकी शोभाको देखतेहुए मार्गके परिश्रमको दूर करना ॥ ३२ ॥

---

१. बालोंको गन्धमय बनानेवाले ।

२. मेघको देखकर मोरोंको बहुत आनन्द होता है । इसलिए यक्षने दोनोंमें बन्धु-प्रीतिकी कल्पना की है । मोरोंका नर्तन ही मेघके लिए उपहार है । गृह-शिखी उन मोरोंको कहते हैं, जिन्हें विलासिनी औरतें आनन्दके लिए पालती हैं ।

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डेश्वरस्य ।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥३३॥

पद्मपराग भरे, जल क्रीड़ारत नारी-सौरभ मय-
गन्धवती के वायु-वेग से कम्पित उपवन जिसका ।
त्रिभुवन-गुरु चण्डेश्वर के तुम पुण्यधाम[1] में जाना
'स्वामि कंठ-छवि क्या ?' यों सादर जाते लखे गणों से ।

हे मेघ ! महादेवके कण्ठके समान कान्तिवाले होनेसे उनके गणोंसे आदरपूर्वक देखे जाते हुए तुम पद्मपरागकी सुगन्धोंसे सम्पन्न और जल-क्रीडामें तत्पर युवतियोंके चन्दन आदि पदार्थोंसे सुगन्धित गन्धवती नामकी नदीके वायुसे कम्पित उद्यानवाले त्रिभुवनके स्वामी महादेवजीके महाकाल नामक पवित्र स्थानको जाओ ॥ ३३ ॥

१. महाकालेश्वर । महाकालेश्वरके दर्शनसे मोक्षकी प्राप्ति होती है :—
"आकाशे तारकं लिंगं, पाताले हाटकेश्वरम् ।
मर्त्यलोके महाकालं, दृष्ट्वा काममवाप्नुयात् ॥"—स्कन्द पुराण

अप्यन्यस्मिञ्जलधर ! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ।
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३४॥

पाकर महाकाल-मन्दिर अतिरिक्त समय[1] में भी तुम
अस्त सूर्य हो जायं न जब तक, जलधर ! वहीं ठहरना ।
सन्ध्याकालिक शिवपूजन में सुन्दर बजा नगाड़े
मधुर-मधुर गरजन के पूरे फल को प्राप्त करोगे ।

हे मेघ ! सन्ध्याके अतिरिक्त कालमें भी तुम महाकालके मन्दिरको प्राप्त कर जब तक सूर्य अस्त नहीं होते हैं तब तक ठहरना । सन्ध्या-कालमें महादेवकी पूजामें प्रशंसनीय नगाड़ेके कामको सम्पादित करते हुए तुम अपने कुछ गम्भीर गर्जनोंके अखण्ड फलको प्राप्त कर लोगे ॥ ३४ ॥

१. सन्ध्याके अलावा अन्य समय । अर्थात् संध्यासे पहले ।

पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै-
रत्नच्छायाखचितबलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥३५॥

चरणन्यास से क्वणित[1] मेखलाएँ, विलास से कम्पित ।
रत्निल दण्डों के चामर से थके हाथ हैं जिनके ।
दीर्घ कटाक्ष वहां छोड़ेंगी तुम पर वे गणिकाएँ
अलिमाला सी, नख-क्षत-सुखकर[2] प्रथम वृष्टि कण पाकर ।

हे मेघ ! सन्ध्या समयमें महाकालके मन्दिरमें नृत्यके अवसरपर चरणन्यासोंमें जिनकी मेखलाएँ शब्द करती हैं, विलाससे कम्पित तथा रत्नोंसे खचित दण्डवाले चामरोंको लेनेसे जिनके हाथ थक गये हैं वैसी वेश्याएँ तुमसे नखक्षतवाले अङ्गोंको सुख देनेवाले वृष्टिके प्रथम बिन्दुओंको पाकर भ्रमरोंकी पङ्क्तियोंके समान दीर्घ कटाक्षोंको तुमपर छोड़ेंगी ॥ ३५ ॥

१. शब्द करती हुई ।

२. नृत्य करते समय पैरोंके नाखूनोंसे लगे हुए घावको अथवा प्रेमियों के नखोंसे जनित क्षतोंक सुख पहुँचाने—शीतल करने वाला ।

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
नृत्तारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥३६॥

तदनन्तर[1] नव जपापुष्प सी ले सन्ध्या की लाली
शिव के ऊँचे भुज[2]-तरु-वन को मण्डल से छा करके।
दृष्टभक्ति[3] गौरी के विरहित-भय निश्चल लोचन से,
रुधिर-सिक्त गज-चर्म[4]-चाह शंकर की पूरी करना।

हे मेघ! सन्ध्यामें पूजाके अनन्तर शिवजीके नृत्यके आरम्भमें नये जपापुष्पके समान लाल सन्ध्याकालके तेजको धारण करतेहुए शिवजीके ऊँचे बाहुवनको मण्डलाकारसे व्याप्त करतेहुए तथा गजाऽसुरके चर्मको देखनेसे उत्पन्न भयके हट जानेसे पार्वतीसे निश्चल नेत्रोसे जिसकी भक्ति देखी जाती है ऐसे तुम गजासुरके आर्द्र चर्मको धारण करनेकी शिवजीकी इच्छाको पूर्ण करना॥ ३६॥

---

१ सन्ध्याकालकी आरतीके बाद।

२. शंकरके, ऊपर फैलाये हुए हाथ ही बड़े-बड़े पोड़ोंके समान हैं। उनपर मण्डलाकार स्थिर होनेवाला मेघ संध्याकालीन लालिमाके कारण गज-चर्म सा प्रतीत होगा।

३. जिस समय भगवान शंकर गजचर्म ओढ़कर नृत्य करते हैं, गौरी बहुत भयभीत रहती हैं। मेघ काला है। सन्ध्याकालीन लालिमाको धारण करनेसे उसका स्वरूप गजचर्म-सा हो जायगा। अतएव शंकरको गजचर्मकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी एवं गौरी निर्भय होकर मेघकी भक्तिको प्रेमपूर्वक देखेंगी।

४ गज-चर्मकी इच्छा।

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ॥३७॥

वहां रात्रि में प्रिय घर जाती बनिताओं की प्यारे !
दृष्टि, रुद्ध जब बने निविड़तम अंधकार से पथ में।
कनक-निकष सी स्निग्ध[1] चंचला से तब धरा दिखाना
तोय-त्याग से शब्द न करना,[2] वे भयालु होती हैं।

हे मेघ ! उज्जयिनीमें रातको कान्तके भवनको जाती हुई अभिसारिकाओंके राजमार्ग जब गाढ़ अन्धकारसे प्रकाशहीन हों तब सोना जाँचनेकी कसौटीकी रेखाके समान तेजवाली बिजलीसे मार्ग दिखलाओ। जलकी वृष्टि और गर्जनसे शब्दशील मत बनो, क्योंकि वे डरपोक होती हैं ॥ ३७ ॥

---

१. सोनेको परखनेकी कसौटीके समान।
२. मेघ यक्षको उनके प्रेममें बाधा न पहुँचानेकी सलाह देता है, क्योंकि :—
"सततं नरके वासो स्नेहविक्षेपकारिणः।"

तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥३८॥

चिर विलसन से खिन्न बने जब विद्युत[1]-प्रिया तुम्हारी
सुप्त-कपोत-भवन के ऊपर बिता रात्रि वह भाई!
तय करना पथ शेष दिवाकर का दर्शन पाने पर
अंगीकृत कर सुहृद-कार्य[2] को साधु नहीं रुकते हैं।

हे मेघ! बहुत समयतक चमकनेसे परिश्रान्त बिजली-रूप पत्नी-वाले आप सोये हुए कबूतरोंसे युक्त किसी घरकी छतपर उस रातको बिताकर सूर्योदयके अनन्तर फिर भी शेष मार्गको पार करना, क्योंकि मित्रके कार्यको अङ्गीकार करनेवाले सज्जन विलम्ब नहीं करते हैं ॥३८॥

---

१. भवभूति ने भी विद्युत्को मेघकी प्रिया माना है—
कच्चित सौम्य प्रिय सहचरी विद्युदालिङ्गति त्वा-
माविर्भूतप्रणयसुमुखाश्चातका वा भजन्ते।
पौरस्त्यो वा सुखयति मरुत् साधु संवाहनानि
विष्वग् बिभ्रत् सुरपतिधनुर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति॥ —मालतीमाधव
२. मित्रके कार्यको करनेकी जिम्मेदारी लेनेके बाद।

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ।
प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥३९॥

प्रातः अश्रु शान्त करना चाहिए खण्डिताओं का
प्रणयी नर[1] को, अतः सूर्य का मार्ग छोड़ हट जाना ।
नलिनी-कमल-वदन से आते वे भी अश्रु हटाने
तुमसे कर अवरोध देख कर ईर्ष्या[2] बहुत बढ़ेगी ।

हे मेघ ! सूर्योदयके समयमें प्रणयी जनोंको खण्डिता नायिकाओंके आँसूका शमन करना चाहिए, इस कारणसे तुम सूर्यके मार्गको शीघ्र छोड़ देना । वे भी कमलिनीके कमलरूप मुखसे हिमरूप आँसूको हटाने के लिए आयेंगे । उस समय तुमसे किरणरूप हाथके रोके जानेपर वे अधिक ईर्ष्यावाले होंगे ॥ ३९ ॥

---

१. रात्रिमें दूसरी औरतोंके साथ घरके बाहर रमण करनवाल ।

२. अपनी प्रियाको सान्त्वना देनेवाले सूर्यके कार्यमें यदि विघ्न उत्पन्न करोगे तो वे तुम्हारे ऊपर बहुत अधिक क्रोधित होंगे—अर्थात् उनकी किरणोंके मध्यमें आनेपर तुम्हें उनकी उग्रता सहन करनी ही पड़ेगी ।

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥४०॥

गंभीरा के हृदय-सदृश अति निर्मल जल में प्यारे !
सहज-सुभग[1] प्रतिबिम्बि तुम्हारा प्राप्त प्रवेश करेगा ।
इससे योग्य नहीं हो धीरज से असफल करने में
कमल-श्वेत, उछलती मीन सी उसकी चल चितवन को ।

हे मेघ ! प्रसन्न चित्तके समान गम्भीरा नामकी नदीके निर्मल जलमें स्वभावसे सुन्दर तुम्हारा छायारूप प्रतिबिम्ब (परछांहीं) भी प्रवेशको प्राप्त करेगा । इस कारणसे कुमुदोंके सदृश उज्ज्वल और चञ्चल मछलियोंके उद्वर्तनोंके समान गम्भीरा नदीके निरीक्षणोंको तुम धैर्य से निष्फल करनेके लिए योग्य नहीं हो ॥ ४० ॥

१. स्वभावतः सुन्दर । अथवा स्वभावतः नारियोंको आकृष्ट करने वाला ।

तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे ! लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥४१॥

सखे ! प्राप्त-वानीर-[1]शाख किंचित् करधृत ज्यों, श्यामल,
कटि-तट[2] से कुछ हटे हुए ले उसके सलिल-वसन को ।
रुके हुए, प्रस्थान तुम्हारा बहुत कष्ट से होगा
कौन रसज्ञ खुली-जघना नारी को तज सकता है ?

हे सखे ! बेतकी शाखातक पहुँचे हुए और हाथसे कुछ पकड़े गयेके समान तटरूप नितम्बको छोड़नेवाले नीलवर्णयुक्त गम्भीरा नदीके जलरूप वस्त्रको हटाकर ठहरे हुए तुम्हारा प्रस्थान कष्टसे होगा; क्योंकि रसका अनुभव किया हुआ कौन-सा पुरुष खुली जघन वाली स्त्रीका त्याग करनेमें समर्थ होगा ? ॥ ४१ ॥

---

१. बेत ।

२. तटरूपी कटि-प्रदेश-नितम्ब ।

नदी-नायिका । मेघ-नायक । श्याम जल-श्याम वस्त्र । तट-नितम्ब । बेतस-नदीका हाथ जिससे वह अपने जलरूपी वस्त्रको बिलकुल गिरनेसे बचाये हुए-पकड़े हुए है ।

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥४२॥

सुरभित है जो धरा-गन्ध छूकर वर्षा होने पर
जाता है जो पिया रम्य-ध्वनिकारी[1] गज सूंड़ों से ।
वन-गूलर को पक्व बनानेवाला शीत पवन वह
ले जायेगा धीरे-धीरे तुम्हें देव-गिरि-गामी[2] !

हे मेघ ! तुम्हारे बरसनेसे भूमिके गन्धके सम्पर्कसे सुगन्धित, सूँड़से शब्दपूर्वक अच्छी तरह हाथियोंसे सूँघा गया और जङ्गलके गूलरोंको परिपक्व करनेवाला शीतल वायु देवगिरिको जानेकी इच्छा करनेवाले तुमको पङ्खा झलेगा ॥ ४२ ॥

---

१. मधुर आवाज करनेवाला ।
२. देवगढ़ जानेवाले ।

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलाऽऽर्द्रैः।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥४३॥

बना पुष्पवर्षी[1] तन अपना, नभ-गंगा से भीगे,
वहां नित्यवासी[2] स्कंद[3] पर, पुष्पसार-बरसाना।
हैं वह इन्द्रचमू रक्षा-हित चन्द्रचूड़[4] से संचित
वह्नि-वदन में महत्तेजधर मारतण्ड से बढ़कर।

हे मेघ ! देवगिरिमें नित्य निवास करनेवाले स्कन्दजीको फूलोंकी वृष्टि करनेवाले मेघके समान शरीरको धारण करते हुए आप आकाश-गङ्गाके जलसे भीगे हुए फूलोंकी वृष्टिसे अभिषेक करें, क्योंकि वे (स्कन्द) इन्द्रके सैन्योंकी रक्षाके लिए भगवान् चन्द्रशेखरसे अग्निके मुखमें सञ्चित तथा सूर्यको भी अतिक्रमण करनेवाले तेज हैं ॥ ४३ ॥

१. फूलकी वर्षा करनेवाला।
२. हमेशा रहनेवाले।
३. कार्तिकेय।
४ शंकर।

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ।
धौताऽपाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥४४॥

उज्ज्वल नेत्र-प्रान्त हैं जिनके शिव-शशि की रेखा[1] से
सेनानी-[2]भौंरों को गुरु-गर्जन से खूब नचाना ।
नील-कमल-दल[3] से शोभित अपने कानों में गौरी
जिनके गिरे सचित्र पंख, वत्सलता से धरती हैं ।

हे मेघ ! अनेक वर्णोंवाले गरे हुए जिसके पंखको भगवती गौरी पुत्रके स्नेहसे नीलकमलके पत्तोंसे शोभित अपने कानमें धारण करती हैं। तुम शिवजीके शिरकी चन्द्रिकासे उज्ज्वल नेत्रप्रान्तोंसे युक्त कार्तिकेयवाहन उस मयूरको पुष्पोंसे अभिषेकके अनन्तर देवगिरिकी गुफामें प्रतिध्वनित होनेसे दीर्घ अपने गर्जनोंसे नचाओ ॥ ४४ ॥

---

१. शंकरके शिरकी चन्द्रिका ।
२. कार्तिकेय ।
३. नील कमलके पत्ते ।

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४५॥

तजें राह जब वीणाधारी सिद्ध मिथुन जल-भय[1] से
शर-जन्मा को पूज, राह पर बढ़ करके कुछ आगे।
चम्बल को सम्मानित करने हेतु उतरना नीचे
स्रोतरूप में बहा धरा पर रन्तिदेव[2] का यश है।

हे मेघ ! भगवान् स्कन्दकी उपासना करके तुम वीणाको लेनेवाले सिद्धदम्पतियोंके जलबिन्दुओंके गिरनेके भयसे तुम्हारा रास्ता छोड़ देनेपर कुछ आगे जाकर गौओंके आलम्भनसे उत्पन्न तथा पृथिवीमें प्रवाहके रूपसे परिणत महाराज रन्तिदेवकी कीर्तिरूप चर्मण्वती (चम्बल) नदीका सत्कार करते हुए उतरो ॥ ४५ ॥

१. वीणापर जल पड़नेसे वह बिगड़ जायेगी, ऐसा भय ।

२. संस्कृतिके पुत्र और दशपुरके राजा, जो बड़े प्रतापी और दानी थे। ये प्रतिदिन यज्ञ में हजारों गायों को बलि देते थे। गायों के आर्द्र चमड़े से बहने वाले लहू से चम्बल नदी की उत्पत्ति हुई थी। यहाँ पर इसी कथा की ओर संकेत है।

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥४६॥

कृष्ण वर्ण तुम जल लेने को, जब नीचे उतरोगे
उसका[1] पृथुल[2] प्रवाह दूर से जो पतला लगता है।
देखेंगे सारे नभ-चारी नीचे कर नयनों को
मानो धरा-मौक्त-माला[3] में इन्द्रनील हो मोटा।

हे मेघ! श्रीकृष्णके वर्णको चुरानेवाले (नील वर्णवाले) तुम जब चर्मण्वतीके जलको लेनेके लिए झुकोगे तब स्थूल होनेपर भी दूरताके कारण सूक्ष्म रूपसे प्रतीयमान उसके प्रवाहको आकाशमें विचरण करनेवाले सिद्ध आदि नेत्रोंको नीचे लगाकर एक लड़ीवाली और मध्यमें स्थूल इन्द्रनीलमणिसे युक्त पृथिवीकी मोतियोंकी मालाके समान देखेंगे ॥ ४६ ॥

१. स्थूल।
२. चम्बलका।
३. पृथ्वी की मोतियों की माला।

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥४७॥

उसे पारकर, भ्रूविलास ज्ञाता, पलकें उठने से-
बहुरंगी शोभामय, चारों ओर कुन्द के रमते-
भ्रमराभावत, दशपुर-[1]नारी-नयनों की आशा का
पात्र बनाते हुए आत्मतन[2] को जाना प्रिय ! आगे ।

हे मेघ ! चर्मण्वती नदीको पार करके तुम अपनी मूर्तिको भ्रूलताके विलासोंको जाननेवाले, पलकोंको ऊँचे करनेसे ऊपर नील और रङ्ग-विरङ्गी कान्तियोंसे शोभित, कुन्दपुष्पोंमें चारों ओर घूमनेवाले भ्रमरोंकी शोभाको चुरानेवाले अभिलाषसे युक्त दशपुरकी स्त्रियोंके नेत्रोंका पात्र बनाते हुए जाओ ॥ ४७ ॥

---

१. रन्तिदेवकी राजधानी ।
२. अपने आपको ।

ब्रह्मावर्तं जनपदमधश्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥४८॥

ब्रह्मावर्त-[1]प्रवेश पूर्णकर छायासे, नभचारी![2]
कुरुक्षेत्र जाना जो भारत का रण बतलाता है।
जैसे तुम कमलों पर धारा-पात किया करते हो
बरसाया था तेज बाण अर्जुन ने राजानन पर।

हे मेघ! तदनन्तर ब्रह्मावर्तमें छायारूपसे प्रवेश करके क्षत्रियोंके युद्धकी सूचना करनेवाले प्रख्यात कुरुक्षेत्रको तुम जाओ। जैसे तुम कमलोंपर मूसलधार वृष्टि करते हो, वैसे ही जहाँपर गाण्डीवधारी अर्जुनने राजाओंके मुखोंपर तीखे बाणोंकी वृष्टि की थी॥ ४८॥

---

१. सरस्वती और दृषद्वतीके बीचका प्रदेश।

२. बादल।

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य ! सारस्वतीना-
मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥४९॥

बन्धुप्रेम[1] से समर-विमुख जिसका सेवन हलधर[2] ने
किया, प्रिया-रेवती-नयन-अंकित हाला को तजकर।
सौम्य ! पान कर उसी सरस्वती सरिता का जल तुम भी
हो जाओगे शुद्ध हृदय के, श्याम रंग से केवल।

बान्धव—कौरव और पाण्डवोंके स्नेहसे बलरामजीने अभीष्ट स्वादवाली तथा अपनी प्रिया रेवतीके नेत्रोंके प्रतिबिम्बसे युक्त सुराको छोड़कर जिस सरस्वती नदीके जलकी सेवा की थी, हे सौम्य ! तुम भी उसी सरस्वतीके जलकी सेवा करके पवित्र अन्तःकरणवाले होकर वर्णमात्रसे श्याम हो जाओगे ॥ ४६ ॥

---

१. कौरवों और पाण्डवोंके प्रति स्नेहके कारण।

२. इन्होंने दुर्योधन और भीम को गदायुद्ध की शिक्षा दी थी।

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥५०॥

तदनन्तर कनखल-[1] समीप शैलाधिराज से उतरी
सगर-पुत्र-तारिणी[2] जाह्नवी-निकट सखे ! तुम जाना ।
गौरीमुख-भ्रूभंग[3] देख डिंडीरों[4] से हंस जिसने
मानो शंभु-केश है पकड़ा लगा ऊर्मि-कर[5] शशिपर ।

हे मेघ ! कुरुक्षेत्रसे कनखल पर्वतके समीप हिमालय पर्वतसे उतरी हुई तथा महाराज सगरके पुत्रोंकी स्वर्गयात्रामें सीढ़ीके समान गङ्गाजीके पास जाओ । जिन गङ्गाजीने पार्वतीके मुखमें स्थित भ्रूभङ्गको मानों फेनोंसे हँसकर तरङ्गरूप हाथोंको चन्द्रमाके ऊपर लगाती हुई शिवजीके केशोंको पकड़ लिया ॥ ५० ॥

१. हरद्वारके पासका एक तीर्थ जो अत्यन्त पवित्र-माना जाता है :—
"खलः को नात्र मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात् ।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ॥" स्कन्दपुराण ।
२. राजा सगरके पुत्रोंको तारनेवाली ।
३. सौतिया-डाह स्वरूप पार्वतीके मुखमें स्थित टेढ़ी भौहें ।
४. फेन
५. लहररूपी हाथ ।

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः ।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा ॥५१॥

ऐरावत[1] ज्यों व्योम-बीच पश्चार्द्ध झुके, हो तिरछे
चाहोगे पीना जब उज्ज्वल-पावन-गंगाजल को ।
सद्यः पड़ती छाया से तब जल में मेघ तुम्हारी
भिन्न जगह कालिन्दी-[2]संगम ज्यों वह सुन्दर होगी ।

हे मेघ ! ऐरावतके समान शरीरके पिछले भागसे आकाशमें और पूर्वभागसे जलके सम्मुख रहकर तिरछे होकर निर्मल स्फटिकके सदृश उज्ज्वल गङ्गाजीके जलको पीनेका विचार करोगे तो उसी क्षण प्रवाहमें पड़ती हुई तुम्हारी छायासे गङ्गाजी प्रयागसे भिन्न स्थानमें यमुनासे मिली हुईके सदृश मनोहर प्रतीत होंगी ॥ ५१ ॥

---

१. सात सूँड़ों वाला, इन्द्र का हाथी ।
२. यमुना ।

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥५२॥

बसे मृगोंकी नाभि-गंध से सुरभित जिसके पाहन
गंगा-प्रभव[1], तुषार-गौर[2] अचलाधिराज को पाकर।
बैठ कि उसके पथ-थकान हरने में सफल शिखर पर
नन्दी से उत्खात[3] पंक की शोभा प्राप्त करोगे।

हे मेघ ! बैठे हुए कस्तूरीमृगोंकी नाभिके गन्धोंसे सुगन्धित पत्थरोंसे युक्त, गङ्गाजीके उत्पत्ति-कारण, हिमशुभ्र हिमालय पर्वतपर पहुँचकर मार्गके परिश्रमको हटानेवाली उसकी चोटीपर बैठे हुए तुम शिवजीके सफेद साँड़से विदारित कीचड़के समान कान्तिको धारण कर लोगे ॥ ५२ ॥

१. गंगा का उत्पत्ति-स्थल।
२. बर्फसे सफेद।
३. विदारित।

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥५३॥

वायु वेग में सरल-रगड़[1] से उपजी उल्काओं से
चमरी-चमर-दग्धिका[2] यदि दावाग्नि जलाये हिमगिरि।
लगातार बरसा जल उसको सखे! शांत कर देना
आर्त-क्लेश-हारिणी संपदा सज्जन की होती है।

हे मेघ! वनकी हवाके बहनेपर सरल (चीड़) वृक्षोंके प्रकाण्डोंकी रगड़से उत्पन्न और उल्काओंसे चमरी गायोंके बालसमूहको जलानेवाली वनकी आग हिमालयको जला दे तो तुम उसे जलधाराओंसे पर्याप्तरूपसे बुझा देनेके लिए योग्य हो, क्योंकि बड़ोंकी समृद्धियाँ आपद्ग्रस्तोंकी पीडा दूर करनेवाली होतीं हैं॥ ५३॥

१. चीड़ की रगड़ से।
२. चमरी गायों के बालों को जलानेवाली।

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥५४॥

वहां उछलते कोप वेग से, त्यक्त-मार्ग भी तुमको-
स्वांग-भंग के लिए तुरत जो शरभ[1] लांघ कर जाएं ।
बरसा करका[2] तुमुल, उन्हें तुम तितर-बितर कर देना
निष्फल-कर्म-प्रयास-शील[3] परिभव न कौन पाता है ?

हे मेघ ! (वहां हिमालयमें) कोपपूर्वक वेगसे उछलनेवाले जो शरभ उनके मार्गको छोड़नेवाले आपको उसी क्षण अपने अङ्गोंका विनाश करनेके लिए लङ्घन करें तो उनको आप पर्याप्तरूपसे ओलोंकी वृष्टि कर तितर-बितर कर डालें, निष्फल कर्म प्रयास करनेवाले कौन पुरुष तिरस्कारके पात्र न होंगे ? ॥ ५४ ॥

---

१. आठ पगोंवाला जंगली जानवर ।

२. ओले ।

३ फलहीन कर्ममें लगा हुआ ।

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरोभिः।
निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥५६॥

मधुर शब्द करते हैं कीचक[1], जहां वायु से पूरित
त्रिपुर-विजय के गीत साथ में हैं किन्नरियां गातीं।
गुफा-बीच निर्घोष तुम्हारा हो मृदंग-ध्वनि-सा यदि
तो संगीत शम्भु का निश्चय ही पूरा हो जाए।

हे मेघ ! वायुसे भरेहुए छेदवाले वंश मधुर शब्द करते हैं। किन्नर-स्त्रियां संयुक्त होकर त्रिपुरविजय गाती हैं। कन्दराओंमें तुम्हारा शब्द पखावजके शब्दके सदृश होगा तो शिवजीका संगीत पूर्ण हो जायगा॥ ५६॥

१. एक प्रकारका बांस।

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ।
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥५७॥

हिमगिरि-तट द्रष्टव्य वस्तुओं को कर पार सखे! तुम
हंस द्वार[1], भृगुनाथ-[2] कीर्ति-पथ, क्रौंचछिद्र[3] से तिरछे-
होकर, शोभावान, अनुसरण करना उत्तर-दिशि का
उद्यत बलि-बन्धन-हित नारायण के श्याम चरण ज्यों।

हे मेघ! हिमालय पर्वतके तटके समीप प्रसिद्ध प्रसिद्ध द्रष्टव्य पदार्थोंका लङ्घन करके मानस सरोवरमें जानेवाले हंसोंके द्वारभूत और परशुरामकी कीर्तिके मार्गस्वरूप क्रौञ्च पर्वतके छिद्रसे बलिका बन्धन करनेके लिए तत्पर भगवान् वामनके कृष्णवर्णवाले चरणके समान तुम तिरछे विस्तारसे शोभित होते हुए उत्तर दिशाकी ओर चले जाओ ॥ ५७ ॥

---

१. मानसरोवरसे उड़कर जानेवाले हंसोंका रास्ता।

२. परशुराम।

३. कहा जाता है कि शिवजी से धनुर्विद्या सीखनेके बाद परशुरामजीने कार्तिकेयके साथ स्पर्धा करते हुए क्रौंच नामक पहाड़में एक छेद बना दिया था. जिसे क्रौंचछिद्र कहा जाता है।

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥५८॥

रावण-भुजा-वियोजित[1] प्रस्थसंधि-कैलास-शिखर[2] के
जा ऊपर, जो सुर-बालाओं का है सुन्दर दर्पण।
होना अतिथि, बिछा कुमुदोज्ज्वल[3] ऊँचे अंग[4] गगन में
राशिभूत शंकर के अनुदिन-अट्टहास सा जो है।

हे मेघ ! तुम क्रौञ्चपर्वतके बिल से निकलनेके अनन्तर ऊपर जाकर रावणकी भुजाओंसे वियोजित प्रस्थसन्धियोंसे युक्त तथा उज्ज्वलताके कारण देवस्त्रियोंके आदर्शके समान कैलास पर्वतके अतिथि बनो। जो कुमुदोंके समान उज्ज्वल और ऊँची चोटियोंसे आकाशको व्याप्त कर प्रतिदिन शिवजीके पुञ्जीभूत अट्टहासके समान स्थित है ॥ ५८ ॥

---

१. रावणकी भुजाओंसे झड़झड़ाये हुए।
२. ढीले जोड़वाले कैलासकी चोटी।
३. कुमुदके समान सफेद।
४. शिखर।

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ।
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥५९॥

तुरत कटे गज-दशन सरिस निर्मल कैलास निकट जब
सारसांजन[1] आभामय तुम पहुंचोगे, सोच रहा हूँ ।
हो जायेगी नयन-पेय[2] तब उस गिरिवर की शोभा
कंध-देश पर श्याम-वस्त्रधारी हलधर[3]-सी जलधर !

सूक्ष्म और पीसेगये कज्जलके समान तुम जब कैलास पर्वतके तट प्रदेशपर पहुँचोगे तब हाथीके उसी क्षण काटेहुए दाँतके टुकड़ेके समान सफेद उस पर्वतकी काले वस्त्रको कन्धेपर धारण किये हुए बलरामकी समान निश्चल नेत्रोंसे दर्शनीय शोभा हो जायगी मैं ऐसी संभावना करता हूँ ॥ ५६ ॥

१. चिकने और घुटे हुए अथवा घी आदि चिकने पदार्थों में घुटे हुए अंजन के समान

२. एकटक देखने योग्य, बहुत ही सुंदर

३. बलभद्र

हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी ।
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ॥६०॥

उस क्रीड़ाचल पर जब पैदल विचरण करें भवानी
भुजग-वलय-विरहित[1]-शंकर के करका गहें सहारा ।
आगे बढ़, जल रोक हृदय में, काया-पर्व[2] बनाकर
मणितट-आरोहण-निमित्त सोपान स्वयं हो जाना ।

हे मेघ ! उस क्रीडापर्वत (कैलास) पर सर्परूप कङ्कणको छोड़कर शिवजीके हाथका सहारा देनेपर पार्वती पैदल चलेंगी तो तुम आगे बढ़कर भीतर जलप्रवाहको रोककर अपने शरीरको जीनेके रूपमें परिणत कर मणितटपर चढ़नेके लिए सीढ़ी बन जाओ ॥ ६० ॥

---

१. सर्परूपी कंगनके बिना ।
२. शरीररूपी सीढ़ी ।

अत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो तन्त्रधारागृहत्वम् ।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे ! धर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः ॥६१॥

वलय-कुलिश का कर प्रहार जलक्रीड़ारत उस गिरि पर
तुम्हें बना देंगी फौहारा निश्चय सुर-बालाएं
छोड़ें अगर नहीं निदाघ[1] में सखे! प्राप्त कर तुमको
तो क्रीड़ारत उन्हें, घोर स्वर से संभीत बनाना।

हे मेघ ! कैलास पर्वतमें देवाऽङ्गनाएँ कङ्कणके अग्रभागोंसे प्रहार करनेसे जल छोड़नेवाले तुमको फुहारा बना डालेंगी। हे मित्र ! गर्मीमें पाये जानेसे तुम्हें वे नहीं छोड़ें तो क्रीडामें आसक्त होनेवाली उनलोगोंको श्रुतिकठोर अपने गर्जनोंसे डरा दो ॥ ६१ ॥

१. गरमी

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन् कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुवन् कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ! ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥६२॥

कभी हेम-अंभोज[1]-जनक मानस के जल को लेते-
ऐरावत का मुख-पट बन कर पल भर प्रेम दिखाना।
कभी हिलाना अंशुक जैसे सुरतरु के पल्लव को
बहलाना मन ललित-ललित क्रीड़ाओं से यों गिरि पर।

हे मेघ ! सुवर्ण-कमलोंको उत्पन्न करनेवाले मानससरोवरके जलको पीतेहुए तुम ऐरावत हाथीके जल लेनेके समय मुखके घूँघटके समान बनतेहुए सूक्ष्मवस्त्रोंके सदृश कल्पवृक्षोंके पल्लवोंको अपनी हवासे हिलाते-हुए अनेक प्रकारोंकी चेष्टाओंसे सम्पन्न क्रीडाओंसे पर्वतराज कैलासका उपभोग करो ॥ ६२ ॥

---

१. स्वर्ण कमल

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥६३॥

कामरूप ! कैलास-अंक में देख तुरत प्रणयी ज्यों
लोगे तुम पहचान स्रस्त-सुरसरि-दुकूल-अलका[1] को ।
उच्च महल वाली वह वर्षा ऋतु में धारण करती
मुक्ताविजड़ित-अलक-कान्ता[2] ज्यों वर्षक अभ्रों को ।

इच्छाके अनुसार विचरण करनेवाले हे मेघ ! जैसे प्रियतमके गोदमें शिथिल वस्त्रवाली कामिनी रहती है उसी तरह प्रणयीके समान कैलास पर्वतके ऊर्ध्वभागमें वस्त्रके समान बहनेवाली गङ्गासे युक्त अलकापुरीको देखकर तुम नहीं जानोगे यह बात नहीं (जान ही जाओगे) । जैसे अभिमान न करनेवाली स्त्री मोतियोंके समूहसे गुम्फित अलकोंको धारण करती है उसीतरह सात मञ्जिलेवाले भवनोंसे युक्त वह (अलका) वर्षाकालमें जलकी वृष्टि करनेवाले मेघसमूहको धारण करती है ॥६३॥

पूर्वमेघ समाप्त ।



१. वह अलका जिसकी गंगा रूपी साड़ी कुछ नीचे खिसक गयी ।

२ वह सुन्दरी, जिसके बालों में मुक्ता गुंथे हों । कैलास—नायक । अलका-नायिका । गंगा—वस्त्र । बादल—बाल । जलबिन्दु—मुक्ता । उच्चमहल—मस्तक ।

३. वर्षा करनेवाले बादलों को ।

उत्तरमेघः

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥१॥

जहां [1]ललित-वनिता, सुचित्र, संगीत-पखावज-स्वर औ,
मणिमय धरा, अपार ऊंचाई से प्रासाद[2] सुरों के,
चपलावान, इन्द्रधनुधारी, प्रिय-गम्भीर-स्वर-कारी
सहज और उत्तुंग तुम्हारी तुलना में सक्षम हैं।

हे मेघ ! जिस अलकापुरीमें इन इन विशेषताओंसे भवन तुम्हारी बराबरी करनेके लिए समर्थ हैं—तुम्हारे पास बिजली हैं तो उनमें सुन्दरियाँ हैं। तुम्हारे पास इन्द्रधनु है तो उनमें चित्र हैं। तुम्हारे पास सुननेके योग्य गम्भीर गर्जन है तो उनमें संगीतके लिए पखावज बजाये जाते हैं। तुम्हारे भीतर जल है तो उनमें मणियोंसे खचित फर्श हैं। तुम उन्नत हो तो वे आकाश-चुम्बी हैं॥ १॥

---

१. अलकापुरी।
२. महल।

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥२॥

जहां करों में कामिनियों के कमल, चूर्णकुन्तल में-
बालकुन्द अनुविद्ध[1], कि मुख पर लोध्र-पुष्प-रज-शोभा,
केशपाश में नव-कुरबक, सुन्दर शिरीष कानों में
और मांग में तुम्हें देख फूले कदम्ब, रहते हैं ।

हे मेघ ! जिस अलकापुरीमें सुन्दरियाँ छः ऋतुओंके फूलोंसे शृङ्गार करती हैं जैसे कि उनके हाथोंमें लीलाकमल, अलकोंमें माघ्यपुष्पोंका गुम्फन (गूंथना), मुखमें लोध्रपुष्पोंके परागोंसे उज्ज्वल शोभा, केश-पाशोंमें नूतन कुरवक पुष्प, कानमें सुन्दर शिरीष-पुष्प और सीमन्त (माँग) में तुम्हारे आगमनसे उत्पन्न कदम्बपुष्प रहता है ॥ २ ॥

१. बंधा हुआ ।

[यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा,
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्म नलिन्यः ।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥]

जहाँ वृक्ष हैं नित्य पुष्पमय मत्तभ्रमर से मुखरित
और पद्मिनी सदा पद्ममय, हंसों से परिवेष्टित,
श्वेत पंख के गृहमयूर उन्नतग्रीवा स्वरकारी
चारु चन्द्रिका चर्चित रजनी रम्य बनी रहती है ।

हे मेघ ! जिस अलकामें पेड़ नित्य फूलोंसे युक्त और उन्मत्त भौरोंसे शब्दायमान हैं, कमललताएँ कमलोंसे नित्य सम्पन्न और हंसोंकी पङ्क्तियोंसे मेखलाकी रचना करनेवाली हैं । गृहमयूर नित्य उज्ज्वल पङ्खोंसे शोभित और शब्द करते समय ग्रीवाको ऊँची करते हैं तथा रातें नित्य चाँदनीसे शोभित और अन्धकारके दूर होनेसे मनोहर दिखाई देती हैं ।

[आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ।
नाप्यन्यस्मात् प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ॥]

जहाँ गिरा करते हैं आँसू एकमात्र खुशियों में
मात्र काम के कारण ही संताप हुआ करता है
विरह प्राप्त होता है केवल प्रणयकोप के कारण
और जवानी छायी रहती है हरदम यक्षों में।

हे मेघ ! जिस अलकापुरीमें यक्षोंके आँसू आनन्दसे ही गिरते हैं, और कारणोंसे नहीं; प्रियसमागमसे हटायेजानेवाले कामबाणसे ही ताप है, और ताप नहीं; प्रेमकलहसे ही विरहप्राप्ति है दूसरे विषयसे नहीं। इसीप्रकार यौवनके सिवाय अन्य अवस्था (बुढ़ापा) नहीं है।

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ।
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥३॥

सितमणिमय[1], तारक-छाया-कुसुमों से लसित महल के-
शिखरों पर जा, जहां यक्ष, उत्तम बालाओं के संग ।
तुम जैसी ध्वनि वाले पुष्कर के धीरे बजने पर
कल्पवृक्ष-उत्पन्न सुरतिफलमधु[2] पीते रहते हैं ।

हे मेघ ! जिस अलकापुरीमें यक्षगण सुन्दरियोंके साथ रातके समयमें स्फटिकोंसे बने हुए और ताराओंके प्रतिबिम्बरूप पुष्पोंसे परिष्कृत भवनोंकी अटारियोंमें जाकर तुम्हारे सरीखे गम्भीर शब्दवाले पुष्कर वाद्योंके धीरे-धीरे बजाये जानेपर कल्पवृक्षसे उत्पन्न रतिक्रीडा रूप फलवाले रतिफल नामके मद्यका वारंवार आस्वादन करते हैं ॥ ३ ॥

---

१. स्फटिक मणिसे युक्त ।
२ कामोद्दीपक मधु ।

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः ।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥४॥

सेवन करतीं गंगाजल से शीतल वायु जहाँ पर
तट-मंदार-तले सुर-प्रार्थित[1]-कन्याएं तज आतप ।
रहती हैं खेलती निरन्तर खेल 'गुप्तमणि' नामक
स्वर्णबालुका-बीच[2] मुष्टि-गोपित-परिमृग्य[3] रतन से ।

हे मेघ ! जिस अलकामें सुन्दरताके कारण देवताओंसे प्रार्थित यक्षकुमारियां आकाशगङ्गाके जलसे शीतल वायुसे सेवित होकर तथा तीरमें उत्पन्न मन्दार वृक्षोंकी छायाके कारण धूपसे पीडित न होती हुई सुवर्णमय बालुकाओंमें मुट्ठी रखकर छिपाये गये अतएव ढूँढनेके योग्य मणियोंसे क्रीडा किया करती हैं ॥ ४ ॥

---

१. वे कन्याएं जिनके प्रेमकी याचना देवता भी करते हैं ।
२. सुनहरी बालूके बीचमें ।
३. मुट्ठी में रखकर छिपाये हुए एंव खोजनेके योग्य ।

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥५॥

ग्रंथिभंग से शिथिल प्रियाओं के रेशमी वसन को
जहां खींचते कामवशीप्रिय जब चंचल हाथों[1] से ।
लज्जामूढ़ा[2], बिम्बओष्ठी, फेंक मुष्टि-चूर्णों[3] को
मणिदीपों की शान्ति हेतु निष्फल प्रयास करती हैं ।

हे मेघ ! जिस अलकामें प्रियतम कामके आवेशसे चञ्चल हाथोंसे वस्त्रकी गाँठके टूटनेसे शिथिल प्रियतमाओंके रेशमी वस्त्रको जब खींचते हैं तब लज्जासे किंकर्तव्यतामूढ बिम्बफलके समान ओष्ठवाली उनके मुष्टिपरिमित कुङ्कुमआदिका चूर्ण उन्नत प्रकाशवाले रत्नदीपों तक पहुँचकर भी (प्रकाशके न बुतनेसे) निष्फल वेगवाला हो जाता है ॥ ५ ॥

१. जो किसी एक अंग या जगह स्थिर नहीं रहता ।
२. स्वाभाविक लज्जावाली ।
३. मुट्ठी में भरे हुए कुंकुम इत्यादि ।

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां स्वजलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः ।
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥६॥

जिसके प्रासादोच्च भागमें लाये गये पवन से
तुम जैसे घन निज जल-कण से दूषित कर चित्रों को ।
शंकित होकर तुरत भाग जाते हैं जाल-पथों[1] से
जैसे जर्जर बनकर बाहर धुआँ निकल जाता है ।

हे मेघ ! अपने प्रेरक वायुसे जिस अलकाके प्रासादोंके ऊँचे भागोंमें पहुँचायेगये तुम्हारे समान मेघ चित्रोंको अपने जलके बिन्दुओंसे दूषित करके उसी क्षण शङ्कित-से होकर धूएँके समान कुशल जर्जर होतेहुए झरोंखोंसे निकल जाते हैं ॥ ६ ॥

१ झरोखा ।

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानाम्-
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥७॥

जहां तुम्हारे हट जाने पर विशद चन्द्र-किरणों से
गुंफित[1] चंद्रकान्त मणियां जल के कण गिरा गिरा कर
प्रियतम के आलिगंन से हांफती कांताओं की-
रतिक्रीड़ा की दूर किया करतीं थकान रजनी[2] में

हे मेघ ! जिस अलकामें आधीरातमें तुम्हारी रुकावट न रहनेसे निर्मल चन्द्रमाकी किरणोंसे व्यक्त रूपसे जलबिन्दुओंको टपकानेवाली चाँदनीके नीचे सूत्रसमूहसे गुम्फित चन्द्रकान्त मणियाँ प्रियतमोंकी बाहुओंके आलिङ्गनसे शिथिल हो जानेवाली स्त्रियोंकी रतिक्रीडासे उत्पन्न शरीरके खेदको हटाती हैं ॥ ७ ॥

१. सूत्रों से गुंथी हुई
२. अर्ध रात्रि

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै-
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किंनरैर्यत्र सार्धम् ।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥८॥

अक्षय-निधि-सम्पन्न, देवसुन्दरी अप्सराओं से
संभाषण-रत कामी प्रतिदिन जिस अलका नगरी में ।
साथ लिये किन्नर कुबेर-यश जो सुमधुर-स्वर गाते
करते रहते हैं विहार वैभ्राज[1] बाह्य उपवन में ।

हे मेघ ! जिस अलकामें भवनके भीतर अक्षय्य निधियोंसे सम्पन्न, देवस्त्रियां अप्सराओंको साथमें लिये हुए और बातचीत करते हुए कामुक-गण प्रतिदिन मधुर कण्ठध्वनिवाले और कुबेरके यशका ऊँचे स्वरसे गान करनेवाले किन्नरोंके साथ वैभ्राज नामवाले कुबेरके बाह्य उद्यानमें सुखका अनुभव करते रहते हैं ॥ ८ ॥

१. कुबेरका चैत्ररथ नामक बगीचा ।

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥९॥

निशा-मार्ग[1] जाना जाता है जहां विलासिनियों का
सूर्योदय होने पर, अलकों से च्युत गति के कारण-
सुरतरु-सुमनों, पर्णकणों औ, कर्ण-स्वर्ण-कमलों से
मुक्ता-जाल, वक्षहारों[2] से-सूत्र कि जिनके टूटे।

हे मेघ ! जिस अलकामें अभिसारिकाओंका रातका मार्ग सूर्योदय होनेपर गतिके कारण अलकोंसे गिरे हुए मन्दारपुष्पोंसे, पत्रलताओंके टुकड़ोंसे, कानोंसे गिरे हुए सुवर्णकमलोंसे, शिरःस्थित मोतियोंकी लड़ियोंसे और कुचप्रदेशपर टूटे हुए सूत्रोंवाले हारों (मोतियोंकी मालाओं) से जाना जाता है ॥ ६ ॥

१. जिस रास्तेसे अभिसारिकाएं अपने प्रेमियोंसे मिलने जाती हैं।

२. तीव्र गतिके कारण विशाल स्तनोंके हिलनेसे छातीपर पड़े हुए हारोंके डोरे टूट जाते हैं और वे नीचे गिर जाते हैं, यहांपर अभिसारिकाओं की तन्मयता एवं प्रियसे मिलनेकी उत्सुकता का अच्छा चित्रण हुआ है। प्रिय से मिलने जाते समय उन्हें अपने आभरणों की भी चिन्ता नहीं रहती।

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।
सभ्रूभङ्गप्रतिहतनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥१०॥

जहां, कुबेर-सखा शंकर को रहता हुआ समझ कर
प्रायः काम भ्रमर-मौर्वी[1] का धनुष न भय[2] से लेता ।
सभ्रूभंग प्रयुक्त दृष्टि औ, सफल कामि-लक्ष्यों पर-
चतुर नारि-विभ्रम, से उसका कार्य सिद्ध होता है ।

हे मेघ ! जिस अलकामें कुबेरके मित्र महादेवको प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान जानकर कामदेव भयसे भौरोंकी प्रत्यञ्चावाले अपने धनुको अकसर धारण नहीं करते हैं। उनका काम भ्रूभङ्गों के साथ दृष्टिपातोंसे युक्त और कामुकरूपी निशानोंपर सफल विदग्धसुन्दरियोंके विलासोंसे ही सिद्ध हो जाता है ॥ १० ॥

१. भ्रमरों की प्रत्यंचा ।
२. क्योंकि भगवान शंकरने उसे जला दिया था ।

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥११॥

चित्रवस्त्र[1] मदिरा-नयनों में जो विलास उपजाती
पाद-पद्म के न्यास योग्य[2] लाक्षारस, सुमन सपल्लव ।
तरह-तरह के भूषण, अबलाओं के सभी प्रसाधन
जिस अलका में एकाकी[3] सुरतरु पैदा करता है ।

हे मेघ ! जिस अलकामें पहननेके लिए अनेक वर्णोंवाले वस्त्र, नेत्रोंमें विलासका उपदेश करनेवाली मदिरा, पल्लवोंके साथ पुष्प, अनेकों अलङ्कार और चरणकमलोंमें समर्पण करनेके योग्य महावर इस प्रकार सम्पूर्ण स्त्रियोंके अलङ्कारोंको अकेला कल्पवृक्ष उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

१. अनेक रंगवाले वस्त्र ।
२. समर्पण करने योग्य, लगाने योग्य ।
३. अकेला ।

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥१२॥

वहां कुबेर-भवन के उत्तर में है भवन हमारा
सुरपति-धनु-सुन्दर-तोरण[1] से जो दिखलायी पड़ता।
जिसके बगल प्रिया से वर्द्धित कृतक पुत्र सा, छोटा
झुका हुआ, भुज-प्राप्य गुच्छ से है मन्दार सुशोभित।

हे मेघ ! उस अलकापुरीमें कुबेरके प्रासादके उत्तर भागमें अवस्थित हम लोगोंका भवन, इन्द्रायुधके समान सुन्दर बाहरके दरवाजेसे दूरसे देखा जाता है। जिसके पार्श्वमें मेरी प्रियासे पुत्रके समान बढ़ाया गया और हाथोंसे तोड़े जानेवाले गुच्छोंसे झुका हुआ छोटा-सा मन्दारका वृक्ष है॥ १२॥

---

१. इन्द्रधनुषके समान सुन्दर तोरण।

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥१३॥

हैं सोपान-मार्ग के पत्थर मरकत-बद्ध कि जिसमें
स्निग्ध विदूरनाल[1] के विकसित स्वर्ण-कमल मय वापी[2] ।
जिसके वासी हंस देख करके भी तुम्हें पयोधर !
शोकहीन, पासस्थ,[3] याद, मानस को कभी न करते ।

मेरे भवनमें जहाँपर पन्नाओंसे सीढ़ियोंका मार्ग बना हुआ है, चिकने वैदूर्यमणि (बिल्लौर) के नालसे युक्त विकसित सुवर्ण-कमलोंसे व्याप्त बावली भी है । जिसके जलमें निवास करनेवाले हंस तुम्हें देखकर भी दुःख न मानते हुए निकटस्थित मानससरोवरको भी याद नहीं करते हैं ॥ १३ ॥

---

१. बिल्लौर-नाल ।
२. बावली ।
३. समीपके ।

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे ! चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥१४॥

मनहर इन्द्रनील-विरचित-शिखरों वाला क्रीड़ागिरि
है सुवर्ण कदली वेष्टन से सुन्दर उसके तट पर ।
देख पास में चमक रही शम्पा के साथ तुम्हें मैं
प्राणप्रियाप्रिय उसको कातर मन से सुमिर रहा हूँ[1] ।

उस बावलीके तीरमें सुन्दर इन्द्रनील मणियोंसे बनी हुई चोटियोंसे सम्पन्न और सुनहली कदलियोंके परिवेषसे दर्शनीय एक क्रीडापर्वत है। हे मित्र ! प्रान्तमें चमकनेवाली बिजलीसे युक्त तुमको देखकर वह क्रीडापर्वत मेरी गृहिणीका प्रिय है इस कारणसे मैं कातर चित्तसे उसीका स्मरण करता रहता हूँ ॥ १४ ॥

१. हे मेघ ! तुम्हें देखकर मुझे उस क्रीड़ागिरिकी बार-बार याद आ रही है। एकान्त और अनेक प्रकार के विहारके उपयुक्त होनेके कारण वह मेरी प्रियाको बहुत प्रिय है। यहाँ पर्वतको स्मरण करके पहले यक्षको हर्ष और बादमें प्रिया की वियोगावस्थाकी याद करके शोक और उद्वेग उत्पन्न हुए हैं।

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरवकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः ॥१५॥

कुरवकवृत, माधवी लतागृह पास सचंचल पल्लव
रक्ताशोक[1] बकुल[2] मनहर पादप हैं उस पर्वत पर।
एक वाम पद-कामी मेरे साथ तुम्हारी सखि का
और दूसरा दोहद[3] मिस मुख-मदिरा चाह रहा है।

हे मेघ! यहाँ (इस क्रीडापर्वतपर) कुरबक वृक्षोंके आवरण (बाड़) से युक्त अतिमुक्तलता-गृहके समीपस्थ चञ्चल पल्लवोंसे सम्पन्न लाल अशोक और सुन्दर बकुल (मौलसिरी) ये दो वृक्ष हैं। उनमें एक (लाल अशोक) मेरे साथ तुम्हारी सखी (मेरी प्रिया) के बाएं पैरके ताडनका अभिलाषी है। दूसरा (बकुल वृक्ष) दोहद (वृक्ष आदिके संस्कारक द्रव्य) के बहानेसे इन (मेरी प्रिया) की मुखस्थित मदिराको चाहता है॥ १५॥

---

१. यह सुन्दरी स्त्रीके बायें चरणके आघातसे फूलता है।
२. यह सुन्दरी स्त्रीके मुख स्थित मद्यके सेचनसे फूलता है।
३. हृदयकी प्रबल इच्छा।

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।
तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥१९॥

हैं नव वंश कान्ति की मणियां बंधी मूल में जिसके
वासयष्टि सोने की [1]उनमें हैं सुस्फटिक फलक[2] की।
शिंजावलयरम्य[3] तालों से प्रिया नचाती जिसको
दिन ढलने पर मित्र तुम्हारा-मोर-बैठता उस पर।

हे मेघ! रक्ताऽशोक और बकुल वृक्षके बीचमें कोमल वंशकी समान कान्तिसे युक्त मणियों की वेदिकावाली और स्फटिकमय पीठसे सम्पन्न सुवर्णमयी वासयष्टि (बैठनेका स्थान) है। शब्द करनेवाले कङ्कणोंसे मनोहर करताल बजाकर मेरी प्रियतमासे नचाया जानेवाला तुम्हारा मित्र मयूर सायङ्कालमें जहाँपर बैठता है॥ १९॥

---

१. रक्त अशोक और बकुल नामक वृक्षों के बीच में।
२. सुन्दर स्फटिककी पीठ।
३. शब्दायमान कंगनोंसे सुन्दर।

एभिः साधो ! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ।
क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥१७॥

रखे हृदय में इन चिह्नों से, द्वार-पार्श्व[1] में साधो !
देखे चित्रकृत शंख-पद्म को, निश्चय इस अवसर पर ।
मेरे बिना कान्तिहत मेरा भवन जान लोगे तुम
दिनकर के अभाव में शोभा पाता नहीं कमल भी ।

हे सज्जन ! चित्तमें रखे गये तोरण आदि इन लक्षणोंसे और द्वारके दोनों ओर लिखे गये शङ्ख और पद्म नामवाली निधियोंको देखकर सत्य ही इस समय (इन दिनोंमें) मेरे वियोगसे उत्सवशून्य होनेसे शोभाविहीन मेरे घर को पहचान लोगे । क्योंकि सूर्यके अस्तपर्वतको जानेपर कमल भी अपनी शोभाको नहीं बढ़ाता है ॥ १७ ॥

---

१. द्वारके दोनों ओर ।

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसम्पातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥१८॥

शीघ्र प्रवेश निमित्त मेघ ! बन कलभ[1] तुल्य तनवाला
बैठ पूर्व उल्लिखित रम्य शिखरों के केलि अचल पर ।
अतिशय अल्प प्रकाशमयी खद्योत-पंक्ति आभा सी
शम्पाऽभास-स्वरूप[2] दृष्टि डालना भवन में धीरे ।

हे मेघ ! शीघ्र प्रवेश करनेके लिए तत्क्षण हाथीके बच्चेके समान शरीरको धारण कर पूर्वोक्त सुन्दर प्रस्थवाले क्रीडापर्वतमें बैठे हुए तुम अल्प प्रकाशवाली और जुगनुओंकी पङ्क्तिके समान बिजलीके प्रकाशरूप दृष्टिको भवनके भीतर डालो ॥ १८ ॥

---

१ हाथीका बच्चा ।
२. बिजली रूपी दृष्टि ।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥१९॥

तन्वी[1], श्यामा[2], दाड़िमदन्ता[3], पक्वबिम्बअधरोष्ठी
चकित मृगी सी चितवन वाली, निम्ननाभि, कटि क्षीणा ।
चलती मन्द नितम्ब भार से, झुकी कुचों से किंचित्
प्रथम नारि रचना सी विधि की हो जो युवति वहां पर ।

हे मेघ ! कृश शरीरवाली, युवती, पके दाडिमके बीजोंके समान दाँतोंवाली, पके बिम्बफल (कुन्दुरू) के समान लाल अधरोष्ठसे शोभित, पतली कमरवाली, डरीहुई मृगीके समान चञ्चल नेत्रोंसे शोभित, गम्भीर नाभिवाली, नितम्बके भारसे धीरे धीरे चलनेवाली, उन्नत कुचोंसे कुछ झुकी हुई और युवतियोंमें ब्रह्माजीकी प्रथम रचनाके समान जो स्त्री होगी उस घरमें प्रवेश करो ॥ १६ ॥

---

१. पतली ।

२. यौवनकी मध्य-अवस्थामें आयी हुई । ऐसी स्त्री शीतकालमें उष्णताका सुख, ग्रीष्मकालमें शीतलताका सुख देती है और उसका रंग तप्त-कांचन सा होता है—

"शीते सुखोष्णसर्वांगी ग्रीष्मे या सुखशीतला ।
तप्तकांचनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते ॥"

३. दाड़िमके बीजके समान दांतोंवाली । ऐसी नारीका पति बहुत दिनों तक जीता है :—"दंताः शिखरिणो यस्याश्चिरं जीवति तत्पतिः ।"

तां जानीयाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् ॥२०॥

बिछुरी मुझ सहचर से एकाकिनी[1] चक्रवाकी सी
मितभाषिणी, उसे जीवन दूसरा समझना मेरा ।
जाने पर इन गुरु दिवसों के उत्कंठित बाला को
शिशिरमथित[2] कमलिनी तुल्य गतशोभा समझ रहा हूँ ।

हे मेघ ! मुझ सहचरके दूरवर्ती होनेपर चक्रवाकी (चकवी) की तरह अल्पभाषिणी और अकेली उसको तुम मेरा दूसरा जीवन जान लो । गाढ़ी उत्कण्ठावाली वह युवती विरहके कारण दीर्घ इन दिनोंके बीतनेपर पालेसे पीडित कमलिनीके समान दूसरे ही रूपको प्राप्त हो गई होगी मैं ऐसी तर्कना करता हूँ ॥ २० ॥

१. अकेली ।
२. जिसका सौन्दर्य पालेने नष्ट कर दिया हो ।

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥२१॥

हस्त-न्यस्त,[1] सूजे हैं जिसके नयन प्रबल रोदन से
निश्वासों की गरमी से गतआभा-अधरोंवाला ।
लम्बे अलकों से अपूर्ण-अभिव्यक्त[2] प्रियामुख निश्चय
तुमसे ढँके अकान्त चन्द्र सा दीन हो रहा होगा ।

हे मेघ ! ज्यादा रोनेसे सूजे हुए नेत्रोंसे युक्त, निःश्वासों के गरम होनेसे कान्तिहीन ओष्ठवाला, हथेलीके ऊपर रखा हुआ, प्रसाधन न करनेसे अलकोंके लटकनेसे अपूर्ण दर्शनवाला प्रियाका मुख तुम्हारे आवरणसे क्षीण कान्तिवाले चन्द्रमाको दीनताको निश्चय धारण कर रहा होगा ॥२१॥

---

१. हथेलीपर रखा हुआ ।
२. थोड़ा-थोड़ा दिखायी पड़नेवाला ।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके ! त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२२॥

लगी हुई सुरपूजन[1] में वा लिखती हुई विरह से-
क्षीण, कल्प्य मेरी प्रतिकृति[2] वा पंजरगत मृदुवचना-
मैना से पूछती, प्रिया दिखलायी तुम्हें पड़ेगी
'करती हो क्या याद, तुम्हें चाहते बहुत थे रसिके !'

हे मेघ ! वह मेरी प्रिया देवपूजाओंमें लगी हुई वा वियोगसे दुर्बल तथा संभावनासे कल्पनीय मेरे चित्रको लिखती हुई अथवा मधुरभाषिणी पिजड़ेमें रही हुई मैनाको "हे रसिके ! क्या तू स्वामीका स्मरण करती है ? क्योंकि तू उनकी प्यारी थी" इस प्रकार पूछती हुई झटपट तुम्हारे दृष्टिपथको प्राप्त होगी ।। २२ ।।

---

१. वियोगको जल्द समाप्त करने, पतिकी खुशी आदि के लिए की गयी देव-पूजा ।

२. यक्ष यहांपर अपने प्रेमके प्रति यक्षिणीका विश्वास बताता है । सामने न होनेके कारण यक्षिणी कल्पना द्वारा यक्षके कमजोर-दुर्बल-शरीरका चित्र बनाती होगी । इससे यक्ष-दम्पती का उभयपक्षी, सम एवं आदर्श प्रेम प्रकट होता है ।

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य ! निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥२३॥

मलिन-वसन-गोदी[1] में वीणा रख नामांकित मेरे
पदको, करती हुई कामना गाने की ऊंचे स्वर ।
किसी तरह से पोंछ अश्रुगीली-तंत्री,[2] देखोगे
बार-बार भूलती स्वयं-रचिता-मूर्च्छना[3] प्रिया को ।

हे सज्जन ! मलिन वस्त्रवाली अपनी गोदमें बीनको रखकर मेरे नामके पदवाले गीतको गान्धार ग्रामसे गानेकी इच्छा करती हुई, आँसुओंसे भीगी हुई परदोंको किसी प्रकारसे पोंछकर बार बार स्वयम् रची हुई मूर्च्छना (स्वरोंके चढ़ाव और उतरावके क्रम) को भूलती हुई मेरी प्रियतमा झटपट तुम्हारे दृष्टिपथको प्राप्त होगी ॥ २३ ॥

---

१. मलिन वस्त्रोंवाली गोद । इससे यक्षिणीका पातिव्रत्य सूचित होता है—
"आर्ताऽऽर्ते, मुदिते हृष्टा, प्रोषिते मलिना, कृशा ।
मृता म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥

२. जिसके तार आंसुओंसे भीग गये हैं । मेरा ध्यान आनेपर उसकी आंखोंमें आंसू आ जायँगे और उनके गिरनेसे वीणाके तार भीग जायंगे ।

३. स्वरके चढ़ाव तथा उतारका क्रम ।

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः ।
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥२४॥

अथवा विरह-दिवस से लेकर अवधि-शेष मासों को
गीन रही होगी देहली के फूल धरा पर रखकर ।
या रस लेती होगी कल्पित मेरे संभोगों का[1]
प्रियवियोग में अबलाओं के हैं विनोद ये प्रायः ।

हे मेघ ! अथवा वियोगके दिनसे आरम्भ कर रखीहुई अवधिके अवशिष्ट महीनोंको देहलीपर रखे हुए फूलोंकी गणनासे जमीनपर रखती हुई (गिनती हुई) अथवा कल्पनासे आरम्भ किये हुए मेरे समागमका अनुभव करती हुई वह मेरी प्रिया झटपट तुम्हारे दृष्टिपथको प्राप्त होगी; क्योंकि प्रियतमके वियोगमें स्त्रियोंको कालयापन करनेके लिए प्रायः ये उपाय हैं ॥ २४ ॥

---

१. दूर होनेके कारण शारीरिक संभोग असंभव है, इसलिए वह मनमें मेरे समागमका अनुभव कर रही होगी ।

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।
मत्सन्देशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयना सौधवातायनस्थः ॥ २५ ॥

मेघ ! तुम्हारी दिवा-व्यस्त[1] भाभी को विरह न मेरा
पीड़ा देगा उतनी जितनी रहित-विनोद क्षपा में[2] ।
बैठ गवाक्ष बीच सुख देने हित मेरी वार्ता से
साध्वी,[3] भूशायिनि, उन्निद्रा[4] को देखना निशा में ।

हे मित्र ! दिनमें पूजा और चित्रलेखन आदि कामोंमें फंसीहुई तुम्हारी सखी (मेरी प्रियतमा) को मेरा वियोग उस प्रकार पीडित नहीं करेगा किन्तु रातमें कालयापनके उपायसे रहित वे दुःसह शोकवाली होंगी मैं ऐसा सोचता हूँ ॥ २५ ॥

१. दिनके समय देवपूजा, चित्रनिर्माण आदि कार्यों में संलग्न ।
२. रात्रि
३. सती, पतिव्रता ।
४. जागती हुई ।

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ २६ ॥

आधिव्यथाकृश[1] विरह-सेज पर एक पार्श्व[2] से सोती
उदयाचल में कलाशेष चन्द्रमा सदृश तन वाली।
रति में मेरे साथ रात जो क्षणवत रही बिताती
विरह-दीर्घ[3] उसको ही होगी काट रही रो-रोकर।

मनकी वेदनासे क्षीण, विरहकी शय्यापर एकही करवटसे लेटनेवाली, उदय पर्वतके प्रान्तमें एकही कलासे अवशिष्ट चन्द्रकी मूर्तिकी सदृश तथा पहले जो रात मेरे साथ इच्छासे की हुई सुरतक्रीडाओंसे कुछ क्षणके समान बिताई गई थी विरहसे दीर्घ वैसीही रातको गरम आँसुओं से बितातीहुई मेरी प्रियाको देखो ॥ २६ ॥

---

१. मनकी व्यथासे दुर्बल ।
२. दुःखी और चिन्तित मनुष्यकी यही दशा होती है ।
३. वियोगके दुःखके कारण जो बहुत लम्बी मालूम पड़ती है ।

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ।
मत्संभोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥२८॥

शुद्धस्नान[1] से परुष, गण्ड तक लटके हुए अलक को
जलते निःश्वासों से निश्चय होगी हिला रही वह ।
सपने में भी किसी तरह से मिले समागम मेरा
अश्रु-निरुद्ध-मार्ग-निद्रा[2] की चाह कर रही होगी ।

हे मेघ ! तैलके विना स्नान करनेसे रूखे और कपोलों तक लटकते अलकोंको पल्लवके समान ओष्ठको गरम करनेवाले निःश्वाससे इधर-उधर हिलाती हुई तथा स्वप्नाऽवस्थामें भी मेरे साथ समागम-सुख किसी भी प्रकारसे प्राप्त हो इस आशयसे आँसुओंसे रोकीगई निद्राको चाहतीहुई मेरी प्रियाको देखो ॥ २८ ॥

---

१. बिना तेल इत्यादि के किया गया स्नान ।

२. वह नींद, जिसका रास्ता आँसुओंने रोक लिया हो । लगातार आँसुओंके बहनेसे नींद नहीं आती ।

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥२९॥

तज कर हार प्रथम वियोग दिन बांधी गयी प्रिया से
खोली जायेगी अशोक मुझ से जो शाप गये पर ।
विषम, लटीली, छूने में दुखदायी उस वेणी को
सार रही होगी कपोल से नख-कर[1] द्वारा प्रायः ।

हे मेघ ! वियोगके प्रथम दिनमें पुष्पमालाको उतारकर जो चोटी बाँधी गई थी, शापके अन्तमें शोकरहित होकर मुझसे खोली जानेवाली, छूनेपर पीडा देनेवाली कठोर और विषम तथा एक ही चोटीके रूपमें विद्यमान उस (चोटी) को विना कटे नाखूनोंसे युक्त हाथसे कपोल-प्रदेशसे वारंवार हटातीहुई मेरी प्रियाको देखो ॥ २६ ॥

---

१. वियोगावस्था में नख न काटनेवाली प्रथा के कारण बढ़े हुए नखों-वाला हाथ ।

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम् ।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥३०॥

अबला वह आभरणहीन भारी दुख से ही प्रायः[1]
तल्पगोद-गत[2] मृदु शरीर को धारण करती होगी
देख उसे नूतन जल-आंसू तुम अवश्य छोड़ोगे
आर्द्र-हृदय प्राणी स्वभाव से ही दयालु होते हैं।

हे मेघ ! अलङ्कारोंसे रहित और वारंवार अतिशय दुःखसे शय्यापर रखेहुए कोमल शरीरको धारण करतीहुई दुर्बल मेरी प्रियाको देखकर तुम भी नूतनजलरूप आँसू निश्चय गिराओगे, क्योंकि प्रायः कोमलहृदय-वाले सबलोग करुणापूर्ण चित्तवृत्तिवाले होते हैं ॥ ३० ॥

१. बार बार

२. शय्या पर रखे हुए। यक्ष कहना चाहता है कि मेरे वियोग में चैन न पड़ने के कारण वह कभी शय्या पर लेटती होगी तो कभी बैठती। यहां नायिका की मूर्च्छावस्था व्यक्त की गयी है।

जाने सख्यास्तव मयि मनः सम्भृतस्नेहमस्मा-
दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ।
वाचालं मां न खलु सुभगंमन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत् ॥३१॥

सखी चाहती मुझे तुम्हारी अतिशय जान रहा हूं
इसीलिए मैं प्रथम विरह में 'ऐसी हुई' बताता ।
सुभग समझने की इच्छा[1] करती वाचाल न मुझको
तात ! कहा मैंने जो कुछ होगा प्रत्यक्ष तुरत ही ।

हे मेघ ! तुम्हारी सखी (मेरी प्रिया) का मन मेरे प्रति प्रेमपूर्ण है मैं इस बातको जानता हूँ, इस कारणसे मैं पहले वियोगमें "वे ऐसी हो गई हैं" इस प्रकार तर्कना करता हूँ। अपनेको सौभाग्यशाली समझने-का भाव मुझे वाचाल नहीं बना रहा है। हे भाई ! मैंने जो कुछ कहा है, वह सब शीघ्र ही तुम्हें प्रत्यक्ष हो जायगा ॥ ३१ ॥

---

१. "इस प्रकारके प्रेमका पात्र मैं हूं" इसे ध्यानमें रखकर अपनेको सौभाग्य-शाली समझनेका भाव ।

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पदि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ३२ ॥

रुद्ध कटाक्ष-कार्य अलकों से,[१] मधुरांजन परित्यागी
मद्यत्याग से भ्रूविलास भूला जो, पास तुम्हें पा ।
ऊपर को फड़कता मृगाक्षी-नयन, मीन से क्षोभित
कुवलयश्री की उपमा प्राप्त करेगा, सोच रहा हूं ।

हे मेघ ! जिसका कटाक्षव्यापार अलकोंसे रुद्ध हो गया है, स्निग्ध अञ्जनसे शून्य, मद्यका निराकरण करनेसे भ्रूविलासको भूलनेवाला, मृगलोचना मेरी प्रियाका वैसा बायाँ नेत्र तुम्हारे निकट आनेपर ऊपरकी ओर फड़कताहुआ मछलीके चलनेसे चञ्चल नीलकमलकी शोभाकी उपमाको प्राप्त कर लेगा मैं ऐसी संभावना करता हूँ ॥ ३२ ॥

---

१. यक्ष बताना चाहता है कि मेरे विरहमें वह अपने बालोंको संवारती भी नहीं होगी । इससे वे बाल उसके मस्तकके दोनों ओर झूल रहे होंगे । ऐसी परिस्थितिमें वह केवल सामने ही देखती होगी । कनखियों तक दृष्टिके व्याप्त न होनेके कारण उसका कटाक्ष-कार्य भी बन्द होगा ।

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या ।
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥३३॥

विरहित[1] मेरे नख-चिह्नों[2] से, दैवयोग से त्यागित-
चिरपरिचित कटिभूषण, रति के बाद हाथ से मेरे ।
आमर्दन के योग्य, सरस कदली खंभे-सा पाण्डुर[3]
फड़क उठेगा प्राणप्रिया का बायां उरु[4] अपने ही ।

हे मेघ ! मेरे नाखूनोंके चिह्नों (नखक्षतों) से रहित, भाग्यवश चिरपरिचित हारमय कटिभूषणसे शून्य, समागमके अनन्तर मेरे हाथोंसे मर्दनके योग्य और रससे आर्द्र केलेके स्तम्भके समान सफेद प्रियतमा-का बायाँ ऊरु फड़क उठेगा ॥ ३३ ॥

---

१. रहित, वियोगी ।
२. रतिक्रीड़ाके समय लगे हुए नाखूनोंके घाव ।
३. गौर ।
४. जांघ ।

तस्मिन्काले जलद ! यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचित्
सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥ ३४ ॥

सोती हो उस समय अगर वह सुख की नींद पयोधर !
पीछे बैठ प्रतीक्षा करना होकर शान्त पहर भर[1] ।
स्वप्न-बीच में किसी तरह मिलने पर मुझ प्रणयी के
आलिंगन का बाहुपाश न तुरत शिथिल हो जाए ।

हे मेघ ! उस समय मेरी प्रियतमाने किसी तरह निद्रासुखको प्राप्त किया हो तो तुम उसके पीछे बैठकर गर्जनको छोड़कर एक प्रहरतक प्रतीक्षा करो; उसके प्रणयी मेरे किसी प्रकारसे स्वप्नमें प्राप्त होनेपर गाढ आलिङ्गन उसी क्षण कण्ठमें बाहुलताके बन्धनसे च्युत न हो जाय ॥ ३४ ॥

१. एक पहर तक रुकनेके लिए कहकर कविने यक्षिणीका पद्मिनीत्व सूचित किया है। पद्मिनी एक प्रहरसे ज्यादा नहीं सोती—

"पद्मिनी यामनिद्रा च द्विपहरा च चित्रिणी ।
हस्तिनी यामत्रितया घोरनिद्रा च शंखिनी ॥"

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ।
विद्युद्गर्भे स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥३५॥

जगा उसे अपने जलकण से शीतल बने पवन से
नव-मालती-कुसुम-कोरक ज्यों प्रत्याश्वस्त[1] प्रिया[2] जब ।
चकित नयन, तुमसे सनाथ वातायन लगे निरखने
विद्युत-गर्भ-धीर,[3] गर्जन-स्वर से कहना[4] सन्देशा ।

हे मेघ ! मेरी प्रियतमाको अपने जलबिन्दुओंसे ठण्डी हवासे जलाकर नयी चमेलीकी कलियोंके साथ सुस्थिता और तुमसे युक्त खिड़कीमें निश्चल नेत्रोंवाली मनस्विनीको बिजलीको भीतर लेकर धीर होतेहुए तुम गर्जनरूप वचनोंसे भाषणका आरम्भ करो ॥ ३५ ॥

---

१. सुस्थित ।
२. मानिनी प्रियतमा ।
३. बिजलीको हृदयमें छिपाकर और धीर होते हुए ।
४. यही भाव 'मालतीमाधव' में प्राप्त होता है—
भगवन् जीमूत,
दैवात् पश्येर्जगति विचरन्निच्छया मत्प्रियां चे-
दाश्वास्यादौ तदनु कथयेर्माधवीयामवस्थाम् ॥
भवभूति—

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे ! विद्धि मामम्बुवाहं
तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥३६॥

उर में ले सन्देश कि उनका[1] आये पास तुम्हारे-
मुझ घन को अपने पति का समझो प्रियमित्र[2] प्रभागे[3] !
अबला-वेणि-मोक्ष-कामी[4] पथ में परिश्रान्त जनों को
प्रेरित करता शीघ्र-गमन हित जो मृदु-धीमी ध्वनि से ।

"हे सौभाग्यवति ! मुझे तुम्हारे प्रियतमके प्रियमित्र और हृदयमें रखे गये उनके सन्देशोंके साथ तुम्हारे पास आयेहुए मेघ समझो । जो (मेघ) विरहिणियोंकी चोटीको खोलनेके लिए उत्कण्ठित तथा मार्गमें थकेहुए पथिकगणोंको गम्भीर और मधुर गर्जनोंसे घरमें शीघ्र पहुँचनेके लिए प्रेरणा देता है" (हे मेघ ! तुम्हें मेरी प्रियतमाको ऐसा कहना चाहिए) ॥ ३६ ॥

---

१. यक्षका ।

२. ऐसा कहनेसे उसके (यक्षिणीके) मनमें विश्वास उत्पन्न होगा ।

३. सौभाग्यवाली (तुम्हारा पति अभी जिन्दा है ।)

४. वियोगके समय अबलाओं द्वारा बाँधी गयी वेणी को छोड़ने की इच्छा रखनेवाले ।

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैव ।
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य ! सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः संगमात्किञ्चिदूनः ॥३७॥

ऐसा कहने पर जानकी-पवनसुत ज्यों वह बाला
उत्कंठा से विकसित चित[1] हो उन्मुख, ध्यान लगाकर ।
सुन लेगी सन्देश देखकर तुम्हें मेघ ! आदर से
मित्रप्राप्तप्रियकथा[2] मिलन से कुछ ही कम होती है ।

हे मेघ ! ऐसा कहनेपर सीताजीने जिस प्रकार हनूमान्‌को देखा था उसी प्रकार मेरी प्रिया ऊँचा मुंहकर और उत्कण्ठासे विकसित चित्तवाली होती हुई तुम्हें देखकर सत्कारपूर्वक सम्पूर्ण सन्देश सावधान होकर सुनेगी ही, क्योंकि हे सज्जन ! मित्रसे लाया गया प्रियतमका वृत्तान्त स्त्रियोंको समागमसे कुछ ही कम होता है ॥ ३७ ॥

---

१. प्रसन्न हृदय ।
२. मित्र द्वारा लाया हुआ प्रियतमका वृत्तान्त ।

तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं "तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले ! पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ३८ ॥

कहना—रहता रामाचल-आश्रम में मित्र तुम्हारा
सकुशल विरही, कुशल तुम्हारा पूछ रहा है अबले !
मेरे कहने से अपने उपकार[1] हेतु आयुष्मन् !
प्रथम पूछने योग्य यही है सुलभ-विपति-प्राणी[2] से ।

हे चिरञ्जीव ! तुम मेरी प्रार्थनासिद्धिके लिए और परोपकारसे अपनेको कृतार्थ करनेके लिए मेरी प्रियतमाको ऐसा कहो—"हे अबले ! तुम्हारा बिछुड़ाहुआ सहचर रामगिरि आश्रममें है तथा कुशली है, और तुम्हारा कुशल पूछ रहा है, क्योंकि सुलभ विपत्तिवाले प्राणियोंको पहले कुशल ही पूछना चाहिए ॥ ३८ ॥

१. अपनी परोपकार-भावना ।
२. जिन्हें प्रायः दुख ही दुख मिलता है ।

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणास्रद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥३९॥

दुर्बल, तप्त, रुदनरत, व्याकुल, दीर्घोच्छ्वासी तन से,
प्रतनु,[1] गर्म, आंसूमय, नित उत्कंठी, उष्णोच्छ्वासी-
तन में, उन [2]संकल्पों से आता है देवि ! तुम्हारे
वैरी विधि से रुद्धमार्ग-प्रेमी जो दूर पड़ा है।

हे सुन्दरि ! प्रतिकूल दैवसे मार्गके रोकेजानेसे दूरस्थित तुम्हारा सहचर दुबले पतले, सन्तप्त, आँसूवाले, उत्कण्ठित और लम्बे निःश्वास-वाले अपने शरीरसे बहुत ही दुबले पतले, विरहके तापसे युक्त, आँसुओं-से गीले, अविच्छिन्न उत्कण्ठावाले और गरम निःश्वासवाले तुम्हारे शरीर-को अपने अनुभूत मनोरथोंसे प्रवेश करता है ॥ ३६ ॥

---

१. बहुत दुर्लभ ।

२. अनुभव किये हुए : —यहां पर कालिदासने यक्ष और यक्षिणी के प्रेममें समानता चित्रित की है। जो दुखमयी अवस्था यक्षिणीकी अलकामें है वही अवस्था यक्षकी, रामाचलमें। जिस प्रकारसे यक्षिणी तलफ रही है वैसे ही यक्ष भी।

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ।
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य-
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥४०॥

जो, कथनीय तुम्हारी सखियों के सम्मुख पद को भी
कल-कपोल-संस्पर्श हेतु[1] नित कानों में कहता था ।
श्रवणविषय से दूर, लोचनों से अदृश्य वह तुमको
कहता है उत्कंठा विरचित यह पद मेरे मुख से ।

हे अबले ! जो प्रियतम पहले सखियोंके सामने कहनेके लिए योग्य वचनको भी तुम्हारे मुखको छूनेके लोभसे कानमें बतानेके लिए उत्कण्ठित था । अभी वही तुम्हारा प्रियतम कान और नेत्रोंके विषयसे दूर होकर तुम्हें उत्कण्ठासे रचेगये पदोंसे युक्त वाक्यसमूह मेरे मुखसे कहता है ॥ ४० ॥

१. सुन्दर कपोलोंको छूनेके लोभ से ।

श्यामास्वङ्गं, चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि, शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि ! सादृश्यमस्ति ॥४१॥

भीत मृगीदर्शन में दृष्टिभंग, श्यामा[1] में तन का
शशि में मुख छाया, केशों का शिखियों के पंखों में ।
नदी-वीचि में भ्रूविलास का तर्क किया करता हूं
हन्त, चण्डि[2] ! पर नहीं एक में भी सादृश्य तुम्हारा ।

हे प्रिये ! प्रियङ्गुलताओं में तुम्हारे शरीर की, डरी हुई मृगियों के नेत्र-व्यापार में तुम्हारे दृष्टिपातकी, चन्द्रमामें तुम्हारी मुखकान्तिकी, मयूरोंके पंखोंमें तुम्हारे केशोंकी और नदीकी पतली तरङ्गोंमें तुम्हारी भौंहोंके विलासोंकी तर्कना किया करता हूँ, परन्तु खेद है कि हे भामिनि ! किसी भी एक पदार्थमें तुम्हारा सादृश्य नहीं है ॥ ४१ ॥

---

१. प्रियंगुलता । मूलमें 'श्यामा' है जो श्यामा का बहुवचन है । ऐसा लिखनेका उद्देश्य यह है कि किसीमें शरीरकी कोमलता, किसीमें सुन्दरता तो किसीमें स्निग्धता मिलती है । पर किसी एकमें तुम्हारे शरीरके सभी गुण नहीं मिलते ।

२. हेमानिनि । यक्षिणी को यह तुलना अच्छी नहीं लगेगी, यह सोचकर इस शब्द में उसके कोप की कल्पना की गयी है ।

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥४२॥

प्रेमरुष्ट[1] तुमको पत्थर पर धातुराग से लिख कर
रखना जब चाहता तुम्हारे चरणों पर[2] अपने को ।
तब तक बहते हुए अश्रु[3] से दृष्टि रुद्ध हो जाती
चित्र-मिलन भी नहीं चाहता निर्दय[4]-दैव हमारा ।

हे प्रिये ! प्रेमसे रूठी हुई तुमको गेरू आदि धातुओंसे पत्थरपर लिखकर अपनेको तुम्हारे चरणोंपर गिराहुआ जब-लिखना चाहता हूँ, तब बहुत बढ़ेहुए आंसुओंसे मेरी आँखें अवरुद्ध हो जाती हैं। कठोर दैव चित्रमें भी हमारे समागमको सहन नहीं करता है ॥ ४२ ॥

१. प्रेम-प्रसंगों में कुपित ।
२. प्रेम-कोपको दूर करने के निमित्त प्रार्थना करने के लिए ।
३. वियोग के दुख से उत्पन्न आँसू ।
४. दया त्यागकर वियोगका दुख देनेवाला ।

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥४३॥

सपने में जब किसी तरह से तुम मुझको मिलती हो
क्रूरालिंगन हेतु भुजाएं हूं नभ में फैलाता।
ऐसा मुझको देख देवियां वन की रो पड़ती हैं
तरु किसलय पर अश्रुबिन्दु[1] मुक्ता ज्यों गिरा निरन्तर।

हे प्रिये! स्वप्नके अनुभावोंमें मुझसे किसी प्रकार जब तुम पाई जाती हो तब तुम्हारे गाढ आलिङ्गनके लिए आकाशमें हाथोंको फैलाये हुए मुझको देखती हुई वनदेवताओंकी मोतियोंकी समान आँसुओंकी बूँदें वृक्षोंके पल्लवोंमें कई बार गिरती ही रहती हैं॥ ४३॥

---

१. देव, गुरुजन और महात्मा के आंसू यदि पृथ्वीपर पड़ें, तो देशनाश, भयंकर दुःख और मरण होता है। इसलिए यहां आंसुओंके तरुकिसलयपर गिरने की बात कही गयी है।

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति! मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥४४॥

तुरत खिला कर देवदारु-पल्लव हिमवान-पवन[1] जो
उनके गिरते पय की ले सुगंधि दक्षिण से चलते।
आते होंगे अंग तुम्हारा छूकर ही वे सगुणे!
ऐसा सोच किया करता हूं मैं उनका आलिंगन।

देवदारुवृक्षोंके पल्लवोंको तत्क्षण विकासित कर उनके बहनेवाले दूधसे सुगन्धित जो हिमालय पर्वतके वायु दक्षिण मार्गसे बहते हैं, हे गुणवति! पहले इन्होंने तुम्हारे अङ्गका स्पर्श किया होगा ऐसी संभावना कर मैं उन वायुओंको आलिङ्गन करता हूँ ॥ ४४ ॥

१. हिमालय से आनेवाली हवा।

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ।
इत्थं चेतश्चटुलनयने ! दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥४५॥

क्षण सी हो संक्षिप्त कि कैसे दीर्घ-पहर की रजनी
दिन भी सभी समय हो कैसे अति मन्दातपकारी[1] ।
असुलभ आशावाला मन मेरा यों चंचल नयने !
है कर दिया गया अनाथ तव गाढ़ी विरह व्यथा से ।

लम्बे पहरोंवाली रात अल्प समयकी तरह कैसे छोटी की जाय ? दिन भी सब अवस्थाओंमें कैसे मन्दसन्तापवाला होगा ? हे चञ्चलनेत्रे ? इस प्रकार दुर्लभ अभिलाषवाला मेरा मन अतिशय तीव्र तुम्हारे विरहके दुःखोंसे अनाथ किया गया है ॥ ४५ ॥

---

१. बहुत कम आतप देनेवाला । भला सूर्य का ताप दिन में कैसे कम हो सकता है । एक तरफ सूर्य का ताप है तो दूसरी तरफ वियोग का । दोनों से असहनीय पीड़ा उत्पन्न हो रही है ।

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि! त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥४६॥

सोच बहुत मैं किसी तरह से तन धारण करता हूं!
रहो न तुम भी दुखी हमेशा इसीलिए कल्याणी!
किसको सदा मिला सुख, किसको है दुख मिला हमेशा
चक्रनेमि[1] की तरह दशा ऊपर-नीचे जाती है।

हे प्रिये! "शापके अन्तमें मैं ऐसा करूँगा" इत्यादि बहुत विचार करता हुआ आप ही अपनेको सँभालता हूँ। इसलिए हे कल्याणि! तुम भी ज्यादा कातर मत बनो। किसे लगातार सुख ही सुख वा दुःख ही दुःख प्राप्त हुआ है? अवस्था पहिएकी धारके क्रमसे नीचे और ऊपर चलती रहती है॥ ४६॥

१. पहिये की धार। जिस तरह से चक्र की ऊपरी धार कभी नीचे आती है, नीचे की धार कभी ऊपर जाती है और यही क्रम बराबर चलता रहता है, उसी तरह जीवनमें कभी सुख आता है तो कभी दुख।

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।
पश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥४७॥

शेष-तल्प[1] से हरि के उठने पर शापान्त हमारा
नयन बन्द कर प्रिये ! बिताओ बाकी चार महीने ।
फिर वियोग में कल्पित अपनी सारी अभिलाषाएं
शरच्चन्द्रिका-लसी-रात[2] में भोगेंगे हम दोनों ।

हे प्रिये ! शेषशय्यासे भगवान् विष्णुके उठनेपर मेरे शापका अन्त होगा । इस कारणसे अवशिष्ट चार महीनोंको आँखें मूँदकर बिताओ । तदनन्तर हम दोनों विरहमें संकल्पित अनेक प्रकारोंसे अवस्थित अपने मनोरथका शरद् ऋतुकी परिणत चन्द्रिकासे युक्त रातोंमें उपभोग करेंगे ॥ ४७ ॥

१. शेषशय्या । उठनेपर-कार्तिक सुदी एकादशी के दिन
२. शरत्कालीन चांदनी से सुशोभित रात्रि ।

भूयश्चाहं त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा।
सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव! रमयन् कामपि त्वं मयेति ॥४८॥

और कहा है–पहले लिपटी हुई गले से मेरे
सोती, निद्रा में सस्वर कुछ रोती जाग उठी थी।
मेरे बहुत पूछने[1] पर हँस धीरे यही कहा था–
"देखा तुमको धूर्त! स्वप्न में पर-रमणी से रमते।'

हे अबले! तुम्हारे पति फिर भी कहते हैं—हे प्रिये! पहले बिछौने-पर मेरे गलेसे लगकर सोईहुई तुम किसी कारणसे ऊँचे स्वरसे रोती हुई जाग उठी। वारंवार मेरे पूछनेपर तुमने मन्द हास्य कर "हे धूर्त! मैंने स्वप्नमें किसी स्त्रीसे रमण करतेहुए तुमको देखा।" ऐसा कहा था ॥४८॥

१. बार-बार पूछने पर।

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने ! मय्यविश्वासिनी भूः ।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥४९॥

समझ मुझे सकुशल, देने से अभिज्ञान ये सारे
असितनयनि ! जग अपवादों[1] से अविश्वास मत करना ।
कहा गया है विरह-विनश्वर[2] प्रेम किसी कारण से
पर अभोग में राशिभूत संचय से हो जाता है ।

हे कृष्णनयने ! पूर्वोक्त अभिज्ञान देनेसे मुझे कुशलयुक्त जानकर लोकाऽपवादके कारण मेरे विषयमें अविश्वास मत करो । लोग स्नेहोंको वियोग होनेपर किसी भी कारणसे नष्ट होनेवाले कहते हैं; परन्तु वे उपभोग न होनेसे अभीष्ट पदार्थमें अभिलाष बढ़नेके कारण प्रेमके राशिरूप हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

---

१. लोकवाणी । "यदि यक्ष तुमसे प्रेम करता होता तो अब तक लौटकर आ गया होता, इस प्रकार की बातें ।"

२. विरह में नष्ट होनेवाला । "आंखसे दूर तो मनसे दूर" ।

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥५०॥

दे धीरज यों शोक-मग्न भाभी को प्रथम विरह से
तुरत लौटना नन्दीक्रीड़ाखेतशिखर[1] से प्यारे ।
लक्षणसह, प्रेषित मंगलमय अपने सखी-वचन से
प्रातकुन्द ज्यों शिथिलप्राण मेरे भी तात ! बचाना ।

हे मेघ ! प्राथमिक वियोगके कारण तीव्र दुःखवाली अपनी सखी (मेरी प्रिया) को इस प्रकारसे आश्वासन देकर शिवजीके वृषभ (नन्दी) से खोदेगये शिखरोंवाले कैलासपर्वतसे शीघ्र लौटकर तुम लक्षणोंके साथ कुशलवार्तासे युक्त प्रियाके वचनोंसे प्रातःकालके कुन्दपुष्पके समान शिथिल मेरे जीवनको भी दृढ कराओ ॥ ५० ॥

---

१. जिस शिखरपर शिवका नन्दी क्रीड़ा किया करता है,—मूल में 'उत्खात' 'खोदे हुए' है ।

कच्चित्सौम्य ! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि ।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥५१॥

हो तत्पर क्या सौम्य[1] ! कार्य मुझ भाई का करने को
ठुकराने हित मौन तुम्हारा निश्चय नहीं, समझता ।
देते हो जल बिना कहे, मांगता कभी जब चातक
प्रेमी[2] की कामना-पूर्ति ही, है सज्जन का उत्तर ।

हे सज्जन ! मेरे इस बन्धुकायको करनेके लिए क्या तुमने निश्चय किया है ? मेरी प्रार्थनाका प्रत्याख्यान करनेके कारण तुम गम्भीर हुए हो मैं ऐसी कल्पना नहीं करता हूँ । तुम प्रार्थित होतेहुए शब्द नहीं करके भी चातकोंको जल देते हो क्योंकि याचकोंके अभीष्ट प्रयोजनका सम्पादन करना ही सज्जनोंका उत्तर होता है ॥ ५१ ॥

१. सात्विक स्वभाववाला ।
२. प्रार्थी ।

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।
इष्टान् देशान् विचर जलद! प्रावृषा सम्भृतश्री-
र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥५२॥

मेघ! मित्रता से या प्रियावियुक्त देख कर अथवा
करुण बुद्धि से दुष्ट-प्रार्थना[1] करने वाले मेरे-
इस अभीष्ट को कर, वर्षा-शोभित विचरो मनचाहे
क्षण का भी वियोग शम्पा[2] से हो न तुम्हारा ऐसा।

हे मेघ! मित्रतासे अथवा "यह प्रियतमासे बिछुड़ गया है" ऐसा समझकर वा करुणाबुद्धिसे अनुचित प्रार्थना करनेवाले मेरे इस प्रिय कार्यको करके वर्षा ऋतुके कारण समृद्ध शोभासे सम्पन्न होतेहुए तुम अभीष्ट देशोंमें विहार करो। एक क्षण भी तुम्हारा बिजलीके साथ मेरे समान वियोग न हो॥ ५२॥

१. अनुचित प्रार्थना। मेघ महान कुल में उत्पन्न और इन्द्र का प्रियपुरुष है। उससे दूतकार्य जैसे छोटे काम के लिए प्रार्थना करना बिलकुल अनुचित है।

२. बिजली।

[तं सन्देशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽऽचचक्षे
प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ।
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः साऽपि तस्थौ स्वभर्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥]

यक्षप्रिया के प्राण बचानेहित दयालु जलधर ने
कहा पूर्ण सन्देश कि अपनी दिव्यमधुर वाणी में ।
पाकर प्रिय-सन्देश यक्षिणी फूली नहीं समायी
किसकी रही अपूर्ण प्रार्थना भला श्रेष्ठ प्राणी[1] से ।

लोकहितमें तत्पर मेघने उस यक्षपत्नीके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए दिव्यवाणीसे यक्षसन्देश बतलाया । वह (यक्षपत्नी) भी अपने पतिका वृत्तान्त पाकर प्रसन्न चित्तवाली हुई । उत्तम पुरुषोंमें की गई प्रार्थना किनकी सफल नहीं होगी ?

१. 'मेघदूत' के इस भाव का अनुकरण अनेक दूतकाव्यकारों ने किया है । यथा—

कृत्वा कार्यं मम पुनरिदं कीर्तिमेनां च लब्ध्वा
प्रत्यावृत्तः पुनरपि तया सङ्गतः सङ्गतः सन् ।
चेतोरम्ये विहर सलिले स्वेच्छया निम्नगाना-
मव्यापन्ना विहग ! युवयोरस्तु संयोगलक्ष्मीः ॥

—हंस-सन्देश—वामनभट्ट

[श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायाऽस्तकोपः ।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ-
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥]

सुना कि जब सन्देश मेघ से उस दयालु धनपति ने
क्रोध दूर हो गया, शाप का अन्त तुरत कर डाला ।
शोकरहित खुशदिल उस दम्पति का संयोग कराके
इच्छित भोगों का अविरलसुख उनको दिया निरन्तर[1] ।

कुबेरने भी मेघसे कहेगये उस सन्देशको सुनकर करुणापूर्ण हृदयवाले होनेसे क्रोधको हटाकर उसी क्षण शापका अन्त कर शोकसे रहित अत एव प्रसन्न चित्तवाले उन दम्पतियोंको मिलाकर उन्हें अभीष्ट भोगोंका निरन्तर सुख होनेवाले प्रकारसे अनुभव कराया ।

१. कालिदास ने 'मेघदूत' का अंत उसी तरह कौतूहलोत्पादक ढंग से किया है, जैसे उसका प्रारंभ । काव्य कथा-वस्तु की अपूर्ण अवस्था में ही समाप्त हो जाता है जिससे पाठक की जिज्ञासा अतृप्त ही बनी रहती है । ग्रीक के महाकवि होमर के महाकाव्य 'इलियड' का प्रारंभ एवं अन्त भी इसी तरह से हुआ है ।

परिशिष्टम्

संस्कृत साहित्य में दूत-काव्यों की एक लम्बी परंपरा उपलब्ध होती है। विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर उनका विवरण प्रस्तुत किया है। उन्हीं के आधार पर मैं यहां कतिपय दूत-काव्यों का, स्थानाभाव के कारण, नामोल्लेख मात्र कर रहा हूं।[1]

(१) हंस-दूत

१. हंस-संदेश : वेंकटनाथ अथवा वेदान्तदेशिक : १४वीं शताब्दी।

२. हंस-दूत : वामन भट्ट बाण : १५वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

३. हंस-दूत : रूपगोस्वामी : १६वीं शताब्दी।

४. हंस-संदेश : रघुनाथदास : मात्र बंगाली अनुवाद उपलब्ध है।

५. हंस-संदेश : विद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वती।

६. हंस-दूत : अज्ञात कविकृत।

७. हंस-दूत : पूण सरस्वती।

८. हंस-संदेश : अज्ञात कविकृत।

९. हंस-दूत : हंसयोगी।

(२) शुक-दूत

१. शुक-संदेश : लक्ष्मीदास।

२. कीर-दूत : रामगोपाल।

---

१. विशेष विवरण के लिये देखिये :

(१) हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिटरेचर : प्रो० एस० के० डे।

(२) क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—श्रीकृष्णमाचारियर।

(३) आई० एच्० क्यू०—चिन्ताहरण चक्रवर्ती।

(४) इन्फ्लुएंस आफ् द मेघदूत आन सं० लि०—डॉ० कु० जी० वी० दवणे (इन जर्नल आफ् द बाम्बे युनिवर्सिटी, वा० XXX वIII, वा० २, १९६४)

३. शुक-संदेश : करिंगपल्ली नम्बूद्रि।
४. शुक-संदेश : रंगाचार्य।
५. शुक-दूत : यादवचन्द्र विद्यारत्न।

(३) मयूर-दूत

१. मयूर-संदेश : रंगाचार्य
२. मयूर-संदेश : उदय : १४वीं शताब्दी।

(४) कोकिल दूत

१. कोकिल-संदेश : उद्दण्ड कवि : १५वीं शताब्दी का प्रारंभ।
२. कोकिल-संदेश : नृसिंह।
३. कोकिल-संदेश : वेंकटाचार्य।
४. पिक-दूत : अज्ञात कविकृत।
५. पिक-संदेश : दधीचि ब्रह्मदेव।

(५) चातक-संदेश : अज्ञात कविकृत।

(६) चकोर-संदेश : अज्ञात कविकृत।

(७) रथांगदूत : अज्ञात जैन कविकृत।

(८) काक-दूत : चिन्तामन राव।

(९) भृंग-संदेश

१. भृंग-संदेश : वासुदेव।
२. भ्रमर-दूत : रुद्रन्याय वाचस्पति।
३. भ्रमर-संदेश : महालिंग शास्त्री।

(१०) मेघ-दूत

१. यक्षोल्लास : कृष्णामूर्ति।
२. मेघप्रति-संदेश : म० रामशास्त्री।
३. मेघ-दौत्य : त्रैलोक्यमोहन।
४. घन-वृत्त : कोरद रामचन्द्र।
५. मेघ-दूत : मेरुतुंग।
६. मेघ-दूत : मंत्री विक्रम।

(११) पवन दूत

१. पवन-दूत : धोयी : १२वीं शताब्दी।
२. पवन-दूत : वादिचंद्र सूरि : १७वीं शताब्दी।

३. वात-दूत : कृष्णनाथ न्यायपंचानन : १६वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध।

(१२) **चंद्र-दूत**

१. इंदु-दूत : विनय विजयगणि : १६५३ ई०।

२. चंद्र-दूत : जम्बु कवि : १०वीं शताब्दी।

३. चंद्र-दूत : कृष्णचंद्र तर्कालंकार।

(१३) **पदांक-दूत** : कृष्ण सार्वभौम : १७२३ ई०।

(१४) **तुलसी-दूत** : वैद्यनाथ भट्टाचार्य।

(१५) **मनो-दूत**

१. मनोदूत : विष्णुदास : १५वीं शताब्दी।

२. मनोदूत : तैलंग व्रजनाथ : १७५७ ई०।

३. मनोदूत : राजराम।

४. मनोदूतिका काव्य : अज्ञात कविकृत।

५. मनोदूत : अज्ञात जैन कविकृत।

६. चेतोदूत : अज्ञात जैन कविकृत।

७. हृदयदूत : भट्ट हरिहर।

(१६) **शील-दूत** : चरित्रसुन्दरगणित।

(१७) **भक्ति-दूती** : कालिका प्रसाद।

(१८) **उद्धव-संदेश**

१. उद्धव-संदेश : रूपगोस्वामी।

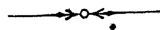
२. उद्धव-दूत : माधव शर्मा।

(१९) **पान्थ-दूत** : भोलानाथ।

(२०) **विप्र-संदेश** : लक्ष्मणसूरि।

(२१) **सुभग-संदेश** : नारायण।

(२२) **सिद्ध-दूत** : अवधूत राम।



श्लोकानुक्रमणिका

पूर्वमेघः

उत्तरमेघः